दो शब्द

आधुनिक हिन्दी कविता में कवि सुमित्रानंदन पंत का अन्यतम स्थान है। प्रस्तुत पुस्तक में उनकी 'ग्रन्थि' की आलोचना है। यों तो इसपर स्वतंत्र रूप से पुस्तक लिखने की कोई आवश्यकता न थी पर अपने पाठकों के आग्रह को मै कैसे टाल सकता था! पाठकों की आवश्यकताओं को दृष्टिपथ में रखते हुए मैंने इसकी रचना की है और साथ-ही-साथ 'ग्रन्थि' की समस्त पंक्तियो का अर्थ भी दे दिया है ताकि पुस्तक अत्यन्त उपयोगी हो जाय। इस पुस्तक के अर्थ-विश्लेषण में प्रिय बंधु श्री सूर्य्यदेव नारायण सिह से अत्यधिक सहायता मिली है, उसके लिए सच्चे हृदय से मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ। इसके अतिरिक्त जिन-जिन आलोचकों से प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी भी प्रकार की जो सहायता मिली है उसके लिए उनका कृतज्ञ हूँ। आशा है, पुस्तक उपयोगी और विशेप लाभप्रद हो सकेगी।

६० तूतबाड़ी, गया
२० फरवरी, १९५७

कृष्ण कुमार सिन्हा

विषय-सूची

सुमित्रानन्दन पंत

युग-प्रवर्त्तक पंत हिन्दी की नई धारा के एक जागरूक कवि एवं कलाकार है और हिन्दी कविता की उस नवीन धारा की संज्ञा है 'छायावाद'। वस्तुतः छायावाद अत्यन्त ही भ्रामक संज्ञा है। यों तो इस सम्बन्ध मे यह कहा जाता है कि श्री जयशंकर 'प्रसाद' ही इस काव्य के प्रवर्त्तक है जिसकी गंध 'झरना' की कविताओ मे विद्यमान है। परन्तु पंत ने ही 'शोभा-सुपमावाली वन-माली की तरह' छायावाद की कला को अधिक निखारा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार छायावाद के चार ज्योति-स्तम्भ है और वे है—महादेवी, प्रसाद, पंत और निराला और इन्ही चारो के चरण-चिन्हो पर तत्कालीन हिन्दी कवियो ने अपने काव्यात्मक पग बढ़ाए। महादेवी ने इस कविता मे 'करुणा', प्रसाद ने 'माया' (नारी), पंत ने 'प्रकृति' और निराला ने 'परुपता' का स्वर भरा तथा इन चारो ने काव्य को एक नई शैली दी और नवीन भाव प्रदान किये जिसके फलस्वरूप वे शीर्प आसन पाने के अधिकारी हुए। साहित्य मे इस' वाद' (Ism) का अधिक विरोध हुआ, किन्तु विरोध की ज्वाला अधिक दिनो तक न जल सकी। छायावाद की कोमलता से वह ज्वाला शान्त हो उठी। धीरे-धीरे लोग इस प्रकार की कविताओ के रसास्वादन मे अभ्यस्त हो गए, अब उन्हे आनन्द की भी प्राप्ति होने लगी क्योकि इन लोगो ने काव्य-भापा को मृदुता एव माधुर्य के साथ वह भावाभिव्यंजकता दी जो उनके पहले की कविताओ मे नही थी। अपनी इन्ही विशिष्टताओ के कारण ये छायावादी कवि साहित्याकाश के जाज्वल्यमान

काव्य की नई धारा के चार स्तंभों मे पंत

नक्षत्र सिद्ध हुए। इस कोटि के कवियों में पंत को अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई और उनका अनुकरण सभी दृष्टि से सर्वाधिक हुआ।

पंत हिन्दी के सुकुमार कवि हैं। उनका व्यक्तित्व अत्यन्त ही कोमल एवं आकर्षक है। उनके कौशल से काढ़े घुँघराले बाल तथा

रेखाएँ

उनकी सज्जा, वेशभूषा, मुद्राएँ और रुचिपूर्ण भंगिमाएँ—पंत के व्यक्तित्व को सुघर, प्रभावशाली और कलात्मक बना देती हैं। आज वे छप्पन वर्ष के हो चुके हैं, पर 'बच्चन' जी के शब्दों में—'जब मैं उनकी पचीस वर्ष पहले की तस्वीर याद करता हूँ तो अक्सर मेरे दिमाग में उर्दू का एक शेर चक्कर काट जाता है—

मैंने पूछा अब कहाँ है आपका हुस्नो जमाल,
हँस के बोला वह सनम शाने खुदा थी, मैं न था।

लेकिन पचास वर्ष की उम्र के लोगों में—इसमें आप चाहे तो औरतों को भी शामिल कर सकते हैं—अगर आप पंतजी को खड़ा कर दें तो आज भी मैं उन्हें उनकी सुन्दरता के लिए सबसे ज्यादा नम्बर दूँगा। थोड़े दिन हुए, एक विदेशी चित्रकार ने उनसे कहा था कि यदि आप योरप में होते तो आपको केवल 'मॉडेल' बनाने के लिए लोग हजारों रुपये देने को तैयार होते। पंतजी के बालों में अब वह सुनहलापन नहीं है, वे भूरे और सफेद भी हो चले हैं, पर आज भी वे घुँघराले हैं और कंघी के क्षणिक स्पर्श से इच्छित आकार-प्रकार से उनके सिर पर शोभायमान हो जाते हैं। पंतजी को इन बालों से बड़ा मोह है। लोगों से बातचीत करते, चलते-फिरते उनकी अंगुलियाँ उन्हें ठीक करने में व्यस्त रहती हैं। और इन बालों की सुन्दरता के लिए वे नाई के ऋणी नहीं हैं! अपने जीवन में नाई को उन्होंने बहुत कम ही पैसे दिये होंगे। अपने बाल वे खुद काटते-छाँटते हैं, जैसे अपनी कविता की पंक्तियों को। सरस्वती के भूतपूर्व सम्पादक पंडित देवीदत्त शुक्ल कहा करते थे कि पंतजी के बालों में भी कवित्व

है।[१] इन बालो की कलात्मकता के पीछे एक इतिहास छिपा हुआ है। सन् १६१३-१४ की बात है, जब वे सातवे वर्ग के विद्यार्थी थे तब एक रोज उनकी नजर संसार-विजेता नेपोलियन की तस्वीर पर जा टॅगो। उस तस्वीर मे नेपोलियन के लम्बे बाल थे जिसे देखकर उन्होने लम्वे वाल रखना शुरू कर दिया। बालो के अलावे उन्हे पहनावा का भी बहुत शौक है। उनका पहनावा अंग्रेजी ढंग का होते हुए भी निराला है। 'अंग्रेजी कोट को कुछ अपनी रुचि के अनुसार काट-छॉट दिया गया है। टाई भी है, पर खुली कमीज के ऊपर।' 'कपडे अब भी वे अपनी विचित्र काट-छॉट के पहनते है। जिस दर्जी की शामत आई होती है वही उनके कपड़ो को सीने के लिए फॅसता है। पैंट को छोडकर शायद ही कोई ऐसा कपडा हो जिसमे उन्होने कुछ परिवर्तन नही किया। उन्हे कपडे सिलने को देते हुए मैने देखा है—देखो इसको यहॉ से ऐसा काटो कि यहॉ से ढीला हो, यहॉ से फिर ऐसा गोल आये, फिर यहॉ से ऐसा आडा आये, आदि। कई बार कपड़ो का ट्रायल होता है तब उन्हे अपनी पसन्द की चीज मिलती है। यह मानना पडेगा कि उनकी पसन्द और उनके डिजाइनो मे सुरुचि और सुविधा दोनो का ख्याल रहता है। अगर पंतजी राजनीतिक नेता होते तो गाधी-टोपी और जवाहर-जैकेट के समान पंत-कुर्त्ता और पंत-कोट तो जरूर चल पडते। सस्कृतमयी हिन्दी का आन्दोलन अगर कभी चला तो सभव है, लोग पंत-कोट को अपना ले। मै कविवर को सलाह दूँगा कि वे अपने डिजाइनो को पेटेंट करा ले।'[२]

पंत की वेश-भूषा की-सी ही मौलिकता इनके नामकरण मे भी मिलती है। 'नाम तो अपना कोई नही रखता, जो नाम माता-पिता

---

१. श्री हरिवंश राय 'बच्चन' : प्रतीक

२. वही

दे देते हैं उसी को लेकर वह चलता है। पंतजी ने स्वयं अपना नामकरण किया। गत वर्ष उनके बड़े भाई श्री हरिदत्त पंत, मेरे मेहमान थे। उन्होंने बताया कि पंतजी का दिया हुआ नाम था गोसाईं दत्त पंत, और दो भाइयों के नाम थे रघुवर दत्त पंत और देवीदत्त पंत। श्री हरिदत्त पंत के कोई बिहारी मित्र थे सुमित्रानन्दन सहाय: उनके पत्र अक्सर आया करते थे, बस गोसाईं दत्तजी को यह नाम पसंद आगया और उन्होंने अपने को सुमित्रानन्दन कहना शुरू किया।' [३]

जन्म

हिन्दी के प्रियदर्शी कवि पंत का जन्म भारतवर्ष के स्विजरलैंड अल्मोड़ा के कौसानी गाँव मे २० मई सन् १९०० को, दिन के आठ-नौ बजे मे हुआ और सिर्फ छः घंटे के उपरान्त उनकी माता का देहान्त हो गया :

नियति ने ही निज कुटिल कर से, सुखद
गोद मेरे लाड़ की थी छीन ली,
बाल मे ही हो गई थी लुप्त हा !
मातृ-अंचल की अभय छाया मुझे।

पंतजी के पिता पं० गंगादत्त पंत जमीन्दार थे और कौसानी राज्य मे कोषाध्यक्ष थे। उनकी माता का नाम था श्रीमती सरस्वती देवी। पंत अपने चार भाइयों मे सबसे छोटे है और इनके यहाँ जमीन्दारी का काम अब भी होता है।

माँ की मृत्यु से पंत टूअर बन गये थे, परन्तु उनकी फूफी ने उन्हे पाला-पोसा, जो अपने भाई के यहाँ कौसानी मे रहा करती थी। उनकी फूफी का स्वभाव अत्यन्त नम्र एवं उदार था। पंत की स्मृति-शक्ति

बाल्य

तीव्र है और उनकी सब से पुरानी स्मृति उस समय की है जब कि वे करीब-करीब तीन वर्ष के थे। एक दिन वे अपने भाई के साथ रस्सी खींचा-खींची का खेल खेल रहे थे।

---

३ श्री हरिवंश राय 'बच्चन' : प्रतीक

भाई ने रस्सी छोड दी, पंत अंगीठी मे जाकर गिर पड़े जिसके फलस्वरूप उनका कोमल शरीर झुलस गया। जब वे पॉच वर्ष के हुए तब मन्दिर की स्लेटी खपरैल उनके पैर के अगूठे पर गिरी जिसके कारण काफी चोट पहुँची। उन्हे अपने भाई के विवाह की घटना भी याद है, जबकि वे अपने नौकर की पीठ पर चढ़कर बारात गये थे। माता की मृत्यु हो जाने के कारण पंत को माँ के दूध से वचित होना पडा, पर हाँ, उनका कोमल गात मिलिन्स फूड (डब्बे वाले दूध) पर पाला गया। कौसानी मे जहाँ पर उनका घर था, वहाँ से एक दो मील की दूरी के अन्दर कोई घर बसा हुआ नही था। पर एक मील की दूर पर किसी अंग्रेज का एक बॅगला था और 'बगीचे मे काम करने वाले १॥–२ हजार कुली वहाँ पास मे रहा करते थे। यद्यपि सुमित्रानन्दन को बदहजमी की शिकायत ग्यारह साल तक रही, मगर और तरह से स्वास्थ्य अच्छा और शरीर गोल-मटोल था। चचेरे भाई भी कुछ थे, मगर सुमित्रानन्दन घरघुस्सा था। राक्षसो की कहानियाँ, भूतो की कहानियाँ तो बडे शौक से वह सुनता ही था, लेकिन उनके लिए सुन्दर कहानियाँ थी बर्फ की परियो की। जब बर्फ गिर जाती है तब देवदार और चीड़ की सदाहरित पत्रो पर सफेद गोले की तरह छाकर धरती पर चारो ओर रुपहला फर्श बिछा देती है, उस समय परियाँ अपने घरो से निकलती है, फिर उनका नाच शुरू होता है। सुमित्रानन्दन को इन परियो को देखने का बडा शौक था, लेकिन कुछ-कुछ डरता भी था; क्योकि बुआ और दादी ने कह रखा था कि परियाँ छोटे-छोटे बच्चो को उडा ले जाती है। कौसानी में लाल-सफेद रंग के सुन्दर गोल-मटोल पत्थरो की कमी नही थी। सुमित्रानन्दन पत ऐसे पत्थरो को जमा कर फूल-मिठाई से खूब पूजता। घर की स्त्रियो मे गाने का शौक था। कभी बहनें गाती, और कभी दादी देवकी बुढ़ापे के कंपित स्वर मे गुनगुनाती—'माई के मन्दिरवा मे दीपक बारो'; जिसे सुनकर सुमित्रानन्दन पंत भी गुनगुनाने की कोशिश

करता। मकान के पास विशाल देवदारो का उपवन-सा लगा था, उन्हे निहारना और उनसे गिरते पीले चूर्ण को देखना सुमित्रानन्दन को बहुत पसंद आता था। कौसानी (कत्यूर घाटी) और हिमालय के बीच मे कोई व्यवधान नही है, और बालक सुमित्रानन्दन पंत हिमालय के रौप्य-शिखरो को प्रातः-सायं सुवर्णमय होते देख बहुत चकित होता था। कौसानी में साधु अक्सर आया करते थे। पं० गगादत्त पंत साधुसेवी थे। एक बार पूछने पर गगादत्त जी ने सुमित्रानन्दन के बारे मे बतलाया—'यह मेरा सबसे छोटा बेटा है।' साधु ने कहा—'सबसे छोटा या सबसे बडा ?' हाँ, सुमित्रानन्दन ने पीछे अपने को सबसे बड़ा बेटा साबित किया। सुमित्रानन्दन को न खेलने का शौक था न कूदने का, न वह लडता-झगडता था।' ४

चार-पाँच वर्ष की अवस्था मे पंत को खल्ली धराई गई। गाँव मे एक छोटा सा स्कूल था जहाँ उनके फुफेरे भाई अध्यापक थे। वे प्रतिदिन नियमित रूप से स्कूल जाया करते थे।

शिक्षा

पढ़ने मे मन लगता था। उनके बडे भाई अपनी नवविवाहिता पत्नी के मनबहलाव के लिए गा-गाकर मेघदूत (हिन्दी अनुवाद) पढ़ते थे जिसे पंत एकाग्रचित हो सुनते थे। जबकि पंत को काव्य के मर्मो का ज्ञान नहीं था फिर भी उसके छन्द राग और अर्थ को मन लगाकर समझने की चेष्टा करते। लम्बी छुट्टियो मे उनके भाई और मित्र कौसानी आया करते थे, जो इश्क-भरे गजल गाया करते जिसकी लय को वे बड़े मनोयोग से सुना करते थे। गजल की लय से वे वाकीफ हो चुके थे। अतएव सात वर्ष की उम्र मे उन्होंने भी एक गजल लिखा। सन् १९०९—नौ वर्ष की उम्र—मे उन्होंने अपर प्राइमरी (वर्ग ४) की परीक्षा पास कर ली। तब उनके पिता की इच्छा हुई अंग्रेजी पढाने की, परन्तु अंग्रेजी स्कूल गाँव के

---

४ राहुल सांकृत्यायन

रास न था। अतएव नौ वर्ष की उम्र मे उनके पिता ने उन्हे बाहर भेजना उचित न समझा, इसलिए उन्हे अंग्रेजी की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही पिता और भाई से प्राप्त हुई। पंत को उनके बडे भाई हरदत्त पंत बहुत मानते थे। ग्यारह वर्ष की अवस्था (सन् १६११) मे अंग्रेजी पढ़ने के लिए अल्मोडा के गवर्नमेन्ट हाई स्कूल मे भर्ती किये गए। यहाँ उनके मँझले भाई रघुवर दत्त पंत नवें वर्ग मे पढ़ते थे और दोनो अल्मोडा मे साथ रहा करते। नवी कक्षा तक उन्होने वहाँ शिक्षा पाई। फिर वे काशी चले आये और वहाँ के जयनारायण हाई स्कूल मे दाखिल किये गए। यह सकेत किया जा चुका है कि पंत के पिता धार्मिक प्रवृत्तिवाले थे और उनका प्रभाव पंत पर भी पडा जिसके फलस्वरूप वे नियमित रूप से प्रातःकाल ध्यान किया करते। अतएव साधु-संतो के प्रति अनुराग पंत मे होना अनिवार्य था। सन् १६१५ मे उन्हे स्वामी सत्यदेव के प्रवचन सुनने का अवसर प्राप्त हुआ। वहाँ स्वामीजी के द्वारा एक हिन्दी पुस्तकालय की स्थापना हुई। जिसके फलस्वरूप पंत मे हिन्दी-प्रेम और देशभक्ति की भावना प्रस्फुटित हुई। उस समय आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्पादकत्व मे प्रयाग से 'सरस्वती' पत्रिका प्रकाशित होती थी जिसमे श्री मैथिलीशरण गुप्त की कवितायें निकला करती थी और गुप्तजी की कविताओ को वे बडे शौक से पढ़ा करते थे। उस नन्हें-से बालक के मन पर गुप्तजी की काव्य-साधना का प्रभाव पडा और पंतजी ने अपने ऊपर द्विवेदी-युग के सर्वश्रेष्ठ कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त का प्रभाव अपनी काव्य-साधना के शैशव मे स्वीकार किया है और इसीलिए गुप्तजी तथा द्विवेदीजी दोनो की गति-प्रशस्तियाँ लिखी है। कहा जाता है कि पत ने पन्द्रह वर्ष की उम्र मे रोला छंद मे एक पत्र अपने फुफेरे भाई को लिखा था। यही से उनकी काव्य-प्रतिभा की किरणें फूटती है। सन् १६१६ मे उन्होने एक पंजाबी साधु को देखा जिसके काषाय वस्त्र उन्हे अत्यन्त सुन्दर मालूम पड़े। साधु की वाह्य-वेशभूषा

को ही उन्होंने ज्ञान-वैराग्य का वाह्यरूप समझा। साधु का यह जीवन उन्हे अत्यन्त प्रिय मालूम पड़ा। उसी समय से उन्होंने रामायण, महाभारत, गीता आदि पढ़ना आरम्भ कर दिया। एक ओर उनका हृदय ज्ञान-वैराग्यमयी भावनाओं की ओर आकृष्ट हुआ तो दूसरी ओर साहित्य की ओर। पंत की पहली कविता 'अल्मोड़ा अखबार' (सन् १९१६) मे छपी। इस समय की कविता का छंद था हरिगीतिका, जो छंद 'भारत-भारती' में प्रयुक्त हो पाया था। उन्हीं दिनों 'सुधाकर' (सन् १९१६-१७) नाम की एक हस्तलिखित पत्रिका श्यामाचरण पंत (साहित्यिक गोविन्दवल्लभ पंत के भतीजे) के सम्पादकत्व में निकली जिसमे उनकी कवितायें प्रकाशित होने लगीं। उनका उत्साह बढ़ने लगा। अतएव अपनी काव्यकला को सँवारने के लिए उन्होंने पूर्ववर्ती साहित्यकारो की कृतियों के साथ-साथ 'छंद-प्रभाकर', 'काव्य प्रभाकर' आदि का अध्ययन किया। पंत के प्रिय कवियों मे थे मतिराम और पद्माकर, बाद मे रससिद्ध कवि बिहारी भी। उनके अत्यन्त प्रिय कवि थे केशवदास। सन् १९१६ मे 'तम्बाकू का धुआँ' शीर्षक कविता 'अल्मोडा अखबार' मे प्रकाशित हुई, जिसकी दो पंक्तिया ये है—

पंत की सर्वप्रथम कविता

सप्रेम पान करके मानव तुझे हृदय में।
रखता जहाँ बसे हैं भगवान विश्व-स्वामी॥

इस प्रकार पंत अबाध रूप से लिखने लगे और अपनी कविताओं का प्रकाशन भी कराते रहे। उस समय उनकी कविताएँ 'सुधाकर' मे बराबर निकला करती थीं। उनकी एक मित्र-मण्डली थी जिसमे लेखों और कविताओं पर तर्क-वितर्क, खण्डन-मण्डन, वाद-विवाद होता था। इलाचन्द्र जोशी और श्यामाचरण पंत उन्हे गुप्त जी का नकलची कहा करते थे। अतएव उनके द्वारा आरोपित आक्षेपों का उत्तर वे 'सुधाकर' के माध्यम से देते थे। फिर भी अपने हृदय में उन आरोपित आक्षेपों को सच मानते थे। इसीलिए 'उनकी

प्रतिभा स्वच्छन्द होने की फिक्र मे रहती थी।' नकलची के दोष से मुक्त होने के लिए उन्होने साहित्य का गम्भीर अध्ययन आरंभ किया जिसके फलस्वरूप उनका ज्ञान और शब्द-भाण्डार बढ़ा। उसका परिणाम यह हुआ कि स्कूल के निबंधो मे उन्होने अप्रचलित एवं क्लिष्ट शब्दो का प्रयोग करना आरंभ कर दिया जिसे अध्यापकगण भी पूर्ण-रूपेण समझ न पाये, अतएव उन अध्यापको ने पंत को यह कहा कि वह हिन्दी मे भी उत्तीर्ण न हो सकेगा।

सन् १६१६ से पंत नियमित रूप से कविता लिखने लगे। कभी-कभी तो वे एक ही दिन मे दो-तीन कविताएँ लिख लिया करते थे। पंत आरंभ से ही खड़ी बोली मे कविता लिख रहे थे, ब्रजभाषा को बे-मौसम की शहनाई मानते थे। इसी समय उन्होने 'हार' नामक एक उपन्यास लिखा, जो प्रकाशित नहीं हुआ। सन् १६१७ ई० मे उन्होने मैट्रिक की परीक्षा पास की। जुलाई १६२० मे वे म्योर सेंट्रल कालेज मे भरती हुए। उन दिनो वे हिन्दू बोर्डिंग हाउस मे रहते थे। उन्होने अपने लिए विषय चुना था—संस्कृत, इतिहास और तर्कशास्त्र। इसी वर्ष बोर्डिंग हाउस मे एक कवि-सम्मेलन हुआ था जिसमे पत ने 'स्वप्न' कविता पढ़ी—

बालक के कंपित अधरों पर,
किस अतीत स्मृति का मृदु हास?
जग के इस अविरत निद्रा का,
करता नित रह-रह उपहास?
उन स्वप्नों की स्वर्ण सरित का,
सजनि! कहाँ शुचि जन्मस्थान?
मुस्कानो में उछल उछल मृदु,
बहती वह किस ओर अजान?

आगत विद्वानो ने पत की काव्य प्रतिभा की प्रशसा की। उस समय पंत एक नौसिखुए कवि नहीं, वरन् हिन्दी कविता के यशस्वी कवि हो

चुके थे। यहाँ प्रो० प० शिवाधार पाण्डेय के सम्पर्क मे उनकी काव्य-प्रतिभा को पनपने का सुयोग्य अवसर प्राप्त हुआ। प्रो० शिवाधारजी उनकी प्रतिभा से विशेष प्रभावित हो गए, इसीलिए उन्होंने पत को शेक्सपीयर ग्रन्थावली और लफ-काडियो हर्न की पुस्तके भेट की। इनकी प्रेरणा और प्रोत्साहन से पंत ने उन्नीसवी सदी के रोमाण्टिक साहित्य का अध्ययन, मनन और चिन्तन किया। निरन्तर अध्ययन के फलस्वरूप इनकी काव्य प्रतिभा परिष्कृत हो उठी। सन् १९२५ में पत आई. ए. के आखिरी साल के विद्यार्थी थे और उसी वर्ष असहयोग-आन्दोलन देश मे आरम्भ हुआ था। उन दिनो महात्मा गाँधी प्रयाग आए थे और आनन्द भवन मे ठहरे थे। यो तो पंत को राजनीति के प्रति कोई अभिरुचि नही थी, लेकिन विद्यार्थियो पर गाँधीजी के भाषणो का व्यापक प्रभाव पडा और सभी विद्यार्थियो के साथ उन्होने भी कालेज छोड दिया। इस प्रकार उनकी शिक्षा वही समाप्त हो गई। 'असहयोग करके एकाध सप्ताह पंत 'इण्डिपेण्डेण्ट' के साईक्लोस्टाईल पर छापने के लिए जाते रहे। इसके बाद उनके लिये फिर राजनीति दूसरे लोक की चीज हो गई। उनके असहयोग का असली मतलब हुआ, विश्व-विद्यालय की पढ़ाई से सन्यास ले कविता - सरस्वती की एकान्त आराधना।' असहयोग-आन्दोलन के तीन-चार साल तक प्रो० शिवाधार पाण्डेय के साथ पत का घनिष्ठ सम्पर्क रहा। उन्होने हिन्दी-संस्कृत के प्राचीन कवियो और अंग्रेजी साहित्यकारो की कृतियों के अध्ययन मे ही मदद नही की, वरन् सदा प्रोत्साहन भी दिया। पंत ने सन् १९२२ के सितम्बर मे 'उच्छ्वास' शीर्षक कविता लिखी जो अजमेर से प्रकाशित हुई। प्रो० शिवाधार पाण्डेय ने इसी कविता से नये युग का आरंभ माना और हिंदी के कुछ मान्य विद्वानो ने इसे नयी वस्तु माना। बहुत से विद्वानो ने इस कविता की मखौल उडाई। बख्शीजी ने इसे शब्दाडम्बर कहा। दो साल तक पंत ने साहित्य का विशेष अध्ययन किया।

असहयोग-आन्दोलन और पंत

अब उनका जीवन साहित्य के लिए हो गया था। सन् १९२२ ई० में कायस्थ-पाठशाला में कवि सम्मेलन था, वहाँ पंत ने 'बादल' शीर्षक कविता सुनाई जिसे सुनकर विरुद्ध सम्मति देने वाले बख्शी भी अत्यन्त प्रसन्न हुए और बधाई दी। उस समय से बख्शी जी उनके प्रशंसक हो गए और उनकी कविताओं को आग्रह पूर्वक छापना प्रारंभ किया। सन् १९२४ में उनका झुकाव दर्शन की ओर रहा जिसके चिह्न 'परिवर्तन' शीर्षक कविता में विद्यमान है। सन् १९२४-२८ के बीच उन्होंने कुछ भी नहीं लिखा। इस अर्से में उन्हें पारिवारिक संकटों का सामना करना पड़ा। 'सन् १९२६ में मँझले भाई मर गए। उन्होंने बहुत भारी कारबार शुरू किया था। कारबार की देख-भाल में उतना ख्याल नहीं था और ऊपर से अंधाधुन्ध खर्च। वे ६२००० रुपये का कर्ज छोड़ कर मरे थे। पिता जी ने जायदाद बेचकर कर्ज को अदा किया, लेकिन अगले साल (सन् १९२७) में वे भी चल बसे। परिवार का सारा आर्थिक ढाँचा टूटकर गिर पड़ा। पहले पंत को पैसे की कभी कमी नहीं होती थी। अब एक ओर यह भीषण आर्थिक परिवर्तन और दूसरी ओर दिमागी परेशानी। सन् १९२९ के आते-आते चिंता के बोझ ने पंत के स्वास्थ्य को चौपट कर दिया। उस समय फारसी के एक विद्वान् की सहायता से इण्डियन प्रेस के लिए वे उमर खैय्याम की रुबाइयों का अनुवाद कर रहे थे। दो बजे दिन की गर्मी में बाहर निकले। लू लग गई। १४-१५ दिन बहुत कष्ट में रहे। उस समय दिल्ली वाले डा० जोशी भरतपुर में रहते थे। वह सम्बन्धी भी लगते थे। पंत उनके पास पहुँचे। डा० जोशी ने परीक्षा की और पूर्ण विश्राम करने की सलाह दी। डा० जोशी ने यह भी कहा कि अगर आहार-विहार का ध्यान न रखोगे, तो तपेदिक को सर पर आया ही समझो। उन्होंने माँस खाने के लिए जोर दिया। पंत चौदह साल से मांस छोड़े हुए थे। अब मांस खाना शुरू किया और तीन मास तक, डा० जोशी ही

दैहिक, दैविक और भौतिक दुःख

के पास रहे और उनका वजन ९८ पौण्ड से १३६ पौण्ड हो गया। सन् १९३० के शुरू मे पंत बिजनौर मे चचेरी बहन के पास चले आये और अप्रैल तक वहीं रहे। यहीं उन्होंने कुछ कहानियाँ लिखीं जो 'मधुवन' के नाम से प्रकाशित हुईं। स्वास्थ्य के अच्छे होने के साथ पंत का दुःखवाद भी कम होने लगा। और जल्दी ही वह पूर्ण आशावादी बन गये।'[५]

सन् १९३० के ग्रीष्म मे पंत अल्मोडा लौट आये। वहाँ कालाकाँकर के महाराज अवधेश सिह के छोटे भाई सुरेश सिह से परिचय ही नहीं हुआ, वरन् मित्रता भी हो गई। उनके आग्रह पर पंत कालाकाँकर चले आये। सन् १९३०-३३ के बीच वे वही रहे। कुँवर साहेब ने उन्हें सभी प्रकार की सुविधाएँ दी। इसका संकेत पंत ने 'नौका-विहार' शीर्षक कविता मे किया है :—

कालाकाँकर का राज भवन सोया जल में निश्चिंत, प्रमन
पलकों में वैभव-स्वप्न सघन।

मार्क्सवाद का अध्ययन

यहीं उन्होंने मार्क्सवाद की पुस्तकें पढ़नी शुरू की। 'तीन-चार साल तक वे मार्क्सवाद और रूसी लेखको के ग्रन्थो को पढ़ते रहे। रहस्यवाद ने पूरी तौर से पिण्ड तो नहीं छोडा, लेकिन मार्क्सवाद ने अंतस्तल तक अपना प्रभाव जरूर डाला। भौतिकवाद को कोरा यान्त्रिक जडवाद समझ कर उन्हे जो कुछ विरक्ति-सी आती थी, वह मार्क्सवादी भौतिकवाद के 'गुणात्मक परिवर्तन' से जाती रही।' गुञ्जन और ज्योत्सना की रचना यहीं हुई। सन् १९३८ मे उन्होने 'रूपाभ' निकाला जो पीछे जाकर बंद हो गया।

सभी प्रकार से पंत मुक्त हो गए। अब उनके लिए जीवन एक नया जीवन था। उनके जीवन का दृष्टिकोण बदल चुका था।

---

५. राहुल सांकृत्यायन

अतएव सन् १९३४-३५ ई० की प्रणीत कविताएँ 'युगान्त' के नाम से प्रकाशित हुईं। इस बीच वे कभी अल्मोड़ा में रहे और कभी प्रयाग। सन् १९४३ मे वे अल्मोड़ा मे ही थे। सन् १९४३ मे उन्होने कानपुर, लखनऊ, आगरा, बड़ौदा, बम्बई आदि स्थानो का भ्रमण किया। 'कल्पना' चित्र के निर्माण के सिलसिले में वे पाडीचेरी भी गए थे। सन् १९४५-४६ मे उन्होने 'स्वर्ण-किरण' और 'स्वर्ण-धूलि' की कविताएँ लिखी। इसके बाद की उनकी काव्य-पुस्तक है 'उत्तरा'। हाल मे उनका एक गीति-नाट्य प्रकाशित हुआ है—'शिल्पी'।

उपसंहार

आजकल पंत आल इण्डिया रेडियो मे हिन्दी कार्य-क्रमो का संचालन और निर्देशन कर रहे है। बस !

पंत की भावधारा का क्रमिक विकास

आरम्भ-काल

पंत उस समय से कविता लिख रहे थे, जबकि वे अष्टम् वर्ग के विद्यार्थी थे। तत्कालीन रचनाएँ अब प्रायः नष्ट हो चुकी है, अब प्राप्य नही है। उसी समय से उन्होने नियमित रूप से कविता लिखना प्रारंभ कर दिया था और उस समय उनके आदर्श थे—द्विवेदी-युग के प्रतिष्ठित कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त—

योग्य नही कुछ भेंट : आप चिर मैथिलीशरण
गीत मैथिली के गा छूता स्नेह से चरण !
शैशव से ही रहा आप के प्रति आकर्षण
सलिल मणिति का किया प्रीतिवश चपल अनुकरण।

इस प्रकार उनकी रचनाओ एवं शैली से प्रेरणा ग्रहण कर उन्होने हरिगीतिका, रोला, वीर आदि तत्कालीन प्रचलित छन्दो मे अपनी

कविताओं का सृजन किया। उस समय उनकी कविताओं के विषय होते थे—'तम्बाकू का धुआँ', 'कागज-कुसुम' आदि, जिनमें नवीन भाव-विन्यास एवं शैली अपनी शैशवास्था मे मुखर है। वे रचनाएँ कदाचित् उस समय के हस्तलिखित सुधाकर एवं तत्कालीन पत्रों—हिमालय, अल्मोडा अखबार, मर्यादा आदि—में कुछ मिल सकती है। उस युग की कविताओं के एक दो उदाहरण बानगी के तौर पर देखिये—

(क) सप्रेम पान करके मानव तुझे हृदय में।
रखता जहाँ बसे है भगवान विश्व स्वामी ॥ ६

—तम्बाकू का धुआँ

(ख) कागज कुसुम बता तू छविहीन क्यों बना है।
तू रूप रंग में तो उपवन कुसुम सदृश है ॥

—कागज कुसुम

इसी समय उन्होंने 'अरुण', 'हिमाचल' आदि कविताएँ लिखी और 'हार' नामक एक छोटा-सा उपन्यास लिखा, जो छपा नहीं। उस लघु उपन्यास की पाण्डुलिपि नागरी प्रचारिणी सभा, काशी में सुरक्षित है। सन् १९१८ मे प्रयाग के म्योर कालेज के हिन्दू हॉस्टल मे उन्होंने 'इस विस्तृत हॉस्टल में' शीर्षक कविता लिखी थी—

इस विस्तृत हॉस्टल में मैं सुनती हूँ मेरा भी है सखी! छोटा-सा रूम
जहाँ मेरी आकांक्षा—सूम गूँजती है प्रतिकूल को तूम!

इस युग की कविता में पत की भावी कला का आभास मिलता है जो क्रमशः विकसित होकर वृक्ष की फुनगी पर जा बैठी, जिसके आगे राह नहीं। विद्यार्थी-जीवन से ही काव्य-रचना मे प्रवृत्त होने के कारण उनकी रचनाओं का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हो गया। उनकी रचनाएँ रचना-काल की दृष्टि से इस प्रकार है—वीणा (सन् १९१८),

---

६. अल्मोड़ा अखबार।

ग्रन्थि (१९२०), पल्लव (१६२२-२६), गुंजन (१९२६-३२), युगान्त (१६३४-३६), युगवाणी (१६३७-३९), ग्राम्या (१९३९-४०), स्वर्ण-किरण (१९४७), स्वर्ण-धूलि (१९४७), युगांतर (१६४८), मधुज्वाल (१९४८), उत्तरा (१९४६) और अतिमा (१९५५)।

इनके अतिरिक्त इन्ही संग्रहो (वीणा से ग्राम्या तक) मे से दो सग्रह कवि ने स्वयं संपादित किये है, जो 'पल्लविनी' और 'आधुनिक कवि' के नाम से प्रकाशित हुई है। कवि ने पद्य के अलावा गद्य-साहित्य का भी सृजन किया है। 'ज्योत्सना' नाटिका की रचना सन् १६३४ मे हुई और भिन्न-भिन्न अवसरों पर लिखी हुई कहानियो का संग्रह 'पॉच कहानियॉ' के नाम से सन् १६३६ मे प्रकाशित हुआ। सुतरा यह स्पष्ट है कि पत आज पिछले ३८ वर्षों से लगातार काव्य- साधना कर रहे है।

'वीणा' और उसकी विशेषताएँ

'वीणा' पंत की प्रथम कृति है। यों तो 'वीणा' का प्रकाशन 'पल्लव' के प्रकाशन के बाद हुआ है, फिर भी 'वीणा' की कविताओं का रचना-काल 'पल्लव' के रचना-काल के पूर्व है। कवि ने इस कृति को 'दुधमुहॉ प्रयास' और 'बाल-कल्पना' की सज्ञा से अभिहित किया है और 'वीणा' की भूमिका मे लिखा है कि 'इस संग्रह मे दो-एक को छोडकर अधिकाश रचनाएँ सन् १६१८-१६ की लिखी हुई है। उस कवि-जीवन के नवप्रभात मे नवोढ़ा कविता की मधुर नूपुर-ध्वनि तथा अनिर्वचमीय सौंदर्य से एक साथ ही आकृष्ट हो, मेरा 'मन्द कवि-यशः प्रार्थी निर्बोध, लज्जाभीरु कवि वीणा वादिनी के चरणो के पास बैठ, स्वर साधना करते समय, अपनी आकुल उत्सुक हृत्तन्त्री से, बार-बार चेष्टा करते रहने पर, अत्यन्त असमर्थ अगुलियो के उल्टे-सीधे आघातो द्वारा जैसी कुछ भी अस्फुट अस्पष्ट अक मे जागृति कर सका है, वे उस वीणा के स्वरूप मे आपके सम्मुख उपस्थित है। ७ इसी 'बाल-

७. वीणा : सुमित्रानन्दन पंत की भूमिका से।

कल्पना' 'वीणा' ने हिन्दी कविता-कानन मे एक नया फूल लगाया, जिसकी मादक सुगन्ध ने द्विवेदी-युग के कलावतो के हृदय में आतंकमय स्पंदन भर दिया। इसमे उन महारथियो ने स्वच्छन्दतावाद[८] (Romanticism) की गंध पायी जिससे 'छायावाद' की नयी रागिनी बजनेवाली थी। उस 'द्विवेदी-युग' मे कविता की एकमात्र कसौटी थी भाषा की शुद्धता और अर्थ की सफाई, जिसके फलस्वरूप हिन्दी-कविता-कानन मे म्यूनिसिपलिटी के कूड़े-कर्कट की भॉति इतिवृत्तात्मक कविताओ का ढेर लग गया था। इस कसौटी को अपने पास संजोये रखनेवाले हिन्दी के महारथी स्वच्छन्द कल्पना और नयी अभिव्यंजना को कैसे देख सकते, क्योंकि उनके द्वारा प्रचालित एवं प्रसारित मान्यताओ को पदच्युत होना पड़ता था। अतएव 'छायावाद की नयी शिंजनी' को बजते देखकर पं० पद्म सिंह शर्मा ने हाथ मे हथौड़ा लेकर कोमल एवं सुमधुर 'वीणा' पर चोट करते हुए कहा कि 'कवितावल्लरी को प्रतिभा के वारि से सींच कर पल्लव निकालिये, खुशी से उसकी छाया मे बैठ कर 'वीणा' बजाइये; पर काव्य-कानन के कल्पवृक्षों की जड़ पर—कुमति कुठार न चलाइए। यह अत्याचार असह्य है। आपको इसकी गंध नहीं भाती, शिकायत नही, अपनी पसंद, अपनी रुचि—कीजे कहा करता से न चारो—पर इसकी महक के मतवाले मधुप भी है, उन वृक्षो पर न सही, इनपर दया कीजिये—'पल्लव' के नोकीले और जहरीले कॉटे इनके दिल मे न चुभाइये, 'वीणा' मे सोहनी स्वर छेड़िए, 'मारू राग' न बजाइए।'

यो तो 'छायावाद' के जनक 'प्रसाद' जी है और जनश्रुति है कि इस 'वाद' विशेष का नाम श्री मुकुटधर पाण्डेय द्वारा प्रदत्त है तथा

---

८. जब कविता की भावधारा परम्परागत रूढ़ियो मे जकड़ जाती है, और जब उसके प्राण घुटने लगते है, तब वह उन्मुक्त होने की चेष्टा करती है। यही 'स्वच्छन्दतावाद' है।

इसकी लोकप्रियता बढाने मे पंतजो को सेहरा हासिल है। इस नये 'वाद' को लेकर साहित्याकाश मे दो दल छा गये। एक विरोधी और दूसरा समर्थक। इस युद्ध मे प्रसादजी तटस्थ रहे और 'निराला' जी छायावादी मोर्चे पर खडे होकर लड रहे थे और पंतजी 'निराला' जी के पीछे-पीछे रहे। आचार्य महाबीर प्रसाद द्विवेदीजी ने छाया-वादी कवियो को 'कवित्व-हसा छोकरे' के नाम से पुकारा तो 'निराला' ने इन आलोचको को 'दुर्वासा' की संज्ञा से विभूषित किया और पंत द्वारा उन परम्परावादी आलोचको को 'वीणा' की भूमिका मे 'रणकुशल कठफोरे' की डिग्री मिली और कहा कि—'संत हसो को तो वैसे भी चिन्ता नही रहती: हाँ, वारि-विकार के प्रेमियो के कठोर आघात से बचने के लिए एक बार मैंने सोचा था कि इस भूमिका मे अत्यन्त विनीत तथा शिष्ट शब्दो को चाटुकारिता का रोचक जाल फैलाकर उनकी रणकुशल कठफोरो की-सी ठोंठ को बाँध दूँ। किन्तु 'निज कवित्त केहि लाग न नीका' वाली किंवदंती के याद आते ही मेरे अभिमानी कवि ने निर्ममता का कवच पहन कर मुझे, उनकी लम्बी चोंच के लिए 'शोरवा' तैयार करने से हठात् रोक दिया।'

इस काव्य-सग्रह मे हमे पंत के कवि की भावधारा का प्रथम परि-चय मिलता है। कवि वाह्य-जगत् के सौन्दर्य से प्रभावित है, परन्तु उसका वस्तु-सौन्दर्य अंकित न कर भाव-सौदर्य की सृष्टि करने का प्रयास करता है। इस भाव-सौदर्य ने कहीं प्रार्थना का, कही आत्म-निवेदन का, कही विश्व-प्रेम का, कही आत्मनिष्ठ प्रकृति-अंकन का रूप सॅवारा है, परन्तु सभी स्थलो पर भाव-सौदर्य की प्रधानता है और रूप-सौदर्य का स्थान गौण। समस्त सृष्टि सौदर्यानुभूति से परिपूर्ण है। कवि के मानस-पटल पर आशावादी लहरे किल्लोल कर रही है, उल्लास नाच रहा है। उसने कही भी यथार्थ जीवन की कठोरता को नही देखा है जिसके कारण वह समस्त ससार मे प्रेम का सुनहला प्रकाश देखता है। जैसे—

—२ ग्रन्थि—

मम जीवन की प्रमुदित प्रात सुन्दरि ! नव आलोकित कर !
विकम्पित कर नव सुरभित कर ! गुंजित कर कल कुंचित कर,
खिला प्रेम का नव जलजात, बढ़ा कनक-कर निज मृदुतर !

\+ + +

बना मधुर वीणा निज मात, एक गान कर मम अन्तर !

इसके अतिरिक्त, अनेक कविताओं में कवि के आत्मोत्सर्ग और आत्म-निवेदन के भाव समाहित हैं। निम्नांकित काव्य-संदर्भ में आत्म-निवेदन और प्रार्थना भाव को देखिये—

कुमुद कला बन कल-हासिनि,
अमृत प्रकाशिनि, नभ वासिनि,
तेरी आभा को पाकर माँ !
जग का तिमिर त्रास हर दूँ,
नीरव रजनी में निर्भय ! [वीणा]

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि का दृष्टिकोण सिर्फ प्रेम के क्षेत्र में ही नहीं प्रत्युत जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आशावादी है। इस प्रकार की कविताओं में इस कोटि के गीत ही सब से अधिक कोमल एवं भाव-समन्वित हैं। 'वीणा' की प्रार्थनापरक कविताओं पर कवीन्द्र रवीन्द्र की 'गीतांजलि' का प्रभाव है।

प्रार्थना-विषयक कविताओं के अलावा, इसमें प्रकृति-विषयक कविताएँ भी हैं; परन्तु कवि की प्रकृति जड़ नहीं, वरन् चेतन है। इस संग्रह की रचनाओं में चिन्तन नहीं, वरन् भाव ही मुख्य है। 'वीणा' की 'प्रथम रश्मि का आना रंगिनि' कविता उनकी सर्वोत्कृष्ट कविताओं में से एक है। इसमें अनुभूति, कल्पना, सौंदर्यानुभूति एवं संगीत का सन्तुलित समन्वय है। इस प्रकार पंत की 'वीणा' में हम निम्नांकित विशेषताओं को समाहित पाते हैं—(क) वीणा एक भाव-प्रधान रचना है। (ख) इसमें अभिव्यक्ति पायी हुई भावनाओं की आधारभूमि है बाह्य सौंदर्य। (ग) कवि ने बाह्य सौंदर्य को अंकित

न कर भाव-सौंदर्य का चारु चित्र उतारा है। (घ) प्रेम के क्षेत्र में ही नहीं, वरन् जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कवि का दृष्टिकोण आशावादी है। वह निष्कलुष प्रेम की सफलता पर आशा रखता है। (ङ) कहीं-कहीं दार्शनिक उक्तियों की छाया है (जो आगे की रचनाओं में मुखर है)। (च) इस संग्रह की रचनाओं पर कवीन्द्र रवीन्द्र का प्रभाव है। (छ) भाषा अभी बालरूप में है, प्रौढ नहीं।

ग्रन्थि और उसकी कथा

सन् १९२० में जब पंत का कवि कालेज से गर्मियों की छुट्टी में घर गया तो वहाँ 'ग्रन्थि' की रचना हुई। यह प्रेम पर रचित पंत का पहला काव्य है। 'ग्रन्थि' एक प्रेम-कहानी के साथ-साथ एक विरह काव्य भी है। इसमें एक खण्डकाव्य की कथावस्तु मिलती है। ग्रन्थि की कथावस्तु इस प्रकार है—संध्या समय कवि एक सरोवर में नौका खेता हुआ जा रहा था कि एकाएक नाव जलमग्न होकर डूब गई। भाग्य-वश एक बालिका ने कवि के प्राणों की रक्षा की। वह मूर्छित हो गया था। जब उसने आँखें खोली तो अपने आप को एक बालिका की गोद में सर रखकर लेटा हुआ पाया। कवि सचेत हो उठा। क्षणभर के लिए दोनों की नजरें लड गई। धीरे धीरे दोनों एक दूसरे का परिचय प्राप्त करते हैं और एक दूसरे के प्रेमपाश में बँध जाते हैं। बालिका भी इससे प्रेम करने लग जाती है। संयोग-वियोग के अनेक अवसरों के पश्चात् कवि को यह ज्ञात होता है कि समाज उसके प्रेम को स्वीकार नहीं करता। उस बालिका का ग्रन्थि-बंधन कवि के देखते-देखते किसी अन्य व्यक्ति से कर दिया जाता है और उसके वियोग से कवि के हृदय में जो गाँठ पड जाती है वह कदाचित् कभी खुल नहीं पाती। इसी दुर्घटना का आधार लेकर कवि विप्रलंभ-शृंगार में 'ग्रन्थि' की रचना करता है। इसमें कवि के विरह-दग्ध हृदय के उद्गार प्रस्फुटित हुए हैं। 'वीणा' में पंत का कवि आशावादी था, लेकिन 'ग्रन्थि' में निराशावादी बन गया यद्यपि ग्रन्थि की कथा तो एक-

दम काल्पनिक है।[९] फिर भी इसमे 'जो भावात्मक सचाई (Emotional Sincerity) है, उसके कारण 'ग्रन्थि' की काव्यवस्तु आत्मकथा-जैसी प्रतीत होती है। जगह जगह प्रेम और अन्य विषयों पर जो उक्तियाँ है उनमे कवि का आत्मानुभव भरा हुआ है। यह आत्मानुभव अत्यन्त कटु है। कवि का सपना मानों टूट गया है। जीवन अब वेदनामय, निराशाजनक और निष्फल लगता है। इस परिस्थिति मे कवि अपने हृदय के मर्मोद्‌गार प्रकट करता है। उसके हृदय का सम्पूर्ण रस आँसू बनकर बहने लगता है, लेकिन साथ-साथ ठेस लगने से कवि का मस्तिष्क भी सजग हो जाता है। वह कुछ सोचने भी लगता है। इसी से 'ग्रन्थि' मे जगह-जगह हम जीवन और जगत् के सम्बन्ध मे कवि के दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति पाते है जो सिद्धात-कथन-सा प्रतीत होता है।[१०] इसमे प्रकृति का भी अंकन हुआ है, पर वह है घटना की पृष्ठभूमि के रूप मे।

'ग्रन्थि' मे कवि की मनःस्थिति को हम परिवर्तित रूप मे देखते है—(क) इसमे कवि की दृष्टि प्रकृति की ओर नहीं है, प्रत्युत उसकी समस्त भावनाएँ, कल्पनाएँ नायिका के साकार आलंबन को पाकर साकार हो उठी है। (ख) 'वीणा' का आशावादी दृष्टिकोण 'ग्रन्थि' मे आकर निराशावादी बन गया है। इसमे कवि को यथार्थ जगत् का कटु अनुभव प्राप्त हुआ है। (ग) इसकी कथावस्तु की पृष्ठभूमि तैयार करने मे सिर्फ कल्पना का ही संयोग है, परन्तु वह वास्तविक घटना की तरह लगती है। (घ) सम्पूर्ण काव्य का सौंदर्य वेदनामय अश्रु मे बिखरा हुआ है. (ट) इसकी रचना-शैली पर संस्कृत-काव्य-शैली का प्रभाव है। (च) इसमे छायावाद की शैलीगत विशेषताओं का प्रयोग अल्प मात्रा मे

'ग्रन्थि' की विशेषताएँ

---

९. पंतजी का कथन

१०. प्रो० शिवनन्दन प्रसाद

हुआ है, क्योंकि यह एक वर्णनात्मक काव्य है। (छ) वेदना के फल-स्वरूप कवि ने जीवन और जगत् के सम्बन्ध मे कुछ अपनी मान्यताएँ स्थिर की है, जिनका विकसित रूप आगे की रचनाओ मे मुखर है।

'ग्रन्थि' के बाद 'पल्लव' प्रकाशित हुआ। इसमे पंतजी की सन् १६१८–१६ की कुछ विशिष्ट रचनाएँ (जो फिर 'वीणा' मे सगृहीत नही हुई) और पीछे की सन् १६२५ तक की चुनी हुई कविताएँ संगृहीत है। इस प्रकार कवि के सन् १६२५ तक के विकास का यह अत्यन्त उत्कृष्ट उदाहरण है। सर्वप्रथम इसी संग्रह मे पत की प्रतिभा को पूर्ण उन्मेप प्राप्त हुआ है। आलोचकों की दृष्टि मे पत की रचनाओ मे यह एक सर्व-श्रेष्ठ कृति है। एक विशेप प्रकार की कला इस संग्रह की कविताओ मे पूर्णता को प्राप्त है, क्योंकि यह अनेक वर्षों की साधना का फल है। इस काल मे वह अंग्रेजी के रोमाण्टिक कवियों से प्रभावित रहे है। यही कारण है कि इस कृति की कविताओ में टेनीसन की स्वर-साधना, शेली की कल्पना, कीट्स की मादकता और वर्ड्सवर्थ की प्रकृति का निदर्शन पाते हैं। इसकी कविताओ मे शब्द-रचना और ध्वनि-सौंदर्य के विशेप दर्शन होते है। 'वीणा की रहस्यप्रिय बालिका अधिक मासल, सुरुचि सुरङ्गपूर्ण बनकर प्रायः मुग्धा युवती का हृदय पाकर जीवन के प्रति अधिक संवेदनशील हो गई है। 'सोने का गान', 'निर्झर गान', 'मधुकरी', 'निर्झरी', 'विश्ववेणु', 'वीचि-विलास', आदि रचनाओ मे वह प्रकृति के रगजगत् मे अभिनय करती-सी दिखाई देती है। अब उसे तुहिन-वन मे छिपे स्वर्ण-जाल का आभास मिलता है, ऊषा की मुस्कान कनक-मन्दिर लगने लगी है। वह अब इस रहस्य को नही छिपाना चाहती कि उसके हृदय मे कोमल बाण लग गया है। निर्झरी का अंचल अब आँसुओ से गीला जान पडता है, उसकी कल-कल ध्वनि उसे मूक व्यथा का मुखर भुलाव

पल्लव की कविताओं का विवेचन

प्रतीत होती है। वह मधुकरी के साथ फूलों के कटोरों से मधुपान करने को व्याकुल है। सरोवर की चंचल लहरें उससे आँख-मिचौनी खेलकर उसके आकुल हृदय को दिव्य प्रेरणा से आश्वासन देने लगी हैं।"

'पल्लव' छायावाद युग का मेनिफेस्टो है, क्योंकि इस पुस्तक में पहले पहल छायावाद के बहिरंग की परीक्षा हुई। 'पल्लव' की पहली कविता से ही कवि का स्वच्छंदतावादी दृष्टिकोण स्पष्ट होता है। वह अपनी कविता के संबंध में कहता है :—

न पत्रों का मर्मर संगीत,
न पुष्पों का रस, राग, पराग,
एक अस्फुट, अस्पष्ट, अगीत;
सुप्ति की ये स्वप्निल मुस्कान;
सरल शिशुओं के शुचि अनुराग,
वन्य विहगों के गान !
हृदय के प्रणय-कुञ्ज में लीन,
मूक कोकिल का मादक गान,
बहा जब तन-मन बंधन हीन
मधुरता से अपनी अनजान
खिल उठी रोओं की तत्काल
पल्लवों की यह पुलकित डाल !

—इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि पंत एक भावना-प्रधान कवि हैं। इसमें संकलित कविताओं की आधार भूमि है कवि की भावुकता, जिसके कारण कहीं-कहीं विषय अस्पष्ट ही रहे हैं। इसमें 'हृदय का प्राधान्य है और वह शिशुओं का शुचि अनुराग न होकर युवक का उन्मुक्त प्रणय-गान ही है।'

'पल्लव' की 'उच्छ्वास' और 'आँसू' शीर्षक कविताएँ प्रेम-भावना की उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। इन दोनों कविताओं का आधार है

कवि की विशेष आत्मानुभूति। फलतः ये दोनो रचनाएँ अत्यन्त ही मर्मस्पर्शी है। 'पल्लव' के कवि का दूसरा विषय है—प्रकृति। इसमे प्रकृति के यत्र-तत्र अत्यन्त ही सुन्दर खण्ड-चित्र मिलते हैं। प्रकृति के प्रति कवि का आकर्षण बचपन से ही रहा है, परन्तु कभी-कभी नारी-सौन्दर्य उसके हृदय को आकृष्ट करने का प्रयास करता है, पर वह अपने-आपको नारी को पूर्णरूपेण समर्पित नहीं करता। प्रकृति और नारी के बीच द्वन्द्व चलता है, अन्त मे प्रकृति की ही विजय होती है।[११] प्रकृतिपरक-कविताओ मे वीचि-विलास, मौन-निमंत्रण, बादल, नक्षत्र, वसंत श्री, मधुकरी आदि है।

इसके अतिरिक्त इसमे कल्पना-प्रधान और भाव-प्रधान उत्कृष्ट कविताओ का भी समावेश हुआ है। कल्पना-प्रधान कविताओ के अन्तर्गत बीचि-विलास, विश्ववेणु, निर्झर-गान, नक्षत्र, निर्झरी आदि और भाव-प्रधान कविताओ मे मोह, विसर्जन, मुस्कान, मधुकरी, स्मृति आदि है। विसर्जन और मुस्कान गीतिकाव्य की दृष्टि से उत्कृष्ट है। इसमे कुछ कविताएँ ऐसी है जिनमे भावतत्त्व के साथ-साथ कल्पना-तत्त्व भी समाहित है, यथा—मौन-निमंत्रण, बादल, स्वप्न, छाया और बालापन आदि। कुछ ऐसी कविताएँ भी देखने को मिलती है जिनमे कवि की चितना-शक्ति मुखर हो उठी है। जैसे—विश्व-व्याप्ति,

---

११. छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले, तेरे बाल जाल मे कैसे उलझा दूं लोचन ?
भूल अभी से इस जग को,
तज कर सरल तरंगो को
इन्द्रधनुष के रंगो को
तेरे भ्रू भंगों से कैसे बिंधवा दूँ निज मृग-सा मन ?
भूल अभी से इस जग को।

—मोह

जीवन-यान, नारी और शिशु। भाषा और भाव की दृष्टि से 'पल्लव' एक प्रौढ़ रचना है, इसमें कवि का दार्शनिक पक्ष और विचारधारा पूर्व रचनाओ से अधिक जागरूक है। पंत के शब्दो मे—"'पल्लव' युग का मेरा मानसिक विकास एवं जीवन की संग्रहणीय अनुभूतियाँ तथा राग-विराग का समन्वय विजलियों से भरे बादल की तरह प्रतिबिम्बित है।'

'परिवर्तन' शीर्षक कविता में पंत का दृष्टिकोण और निष्कर्ष

"पल्लव की 'परिवर्तन' शीर्षक रचना हिन्दी-साहित्य की एक प्रमुख रचना मानी जाती है और उसकी श्रेष्ठता में किसी प्रकार का संदेह नही किया जा सकता है। परिवर्तन मे युग की विशेषताएँ, युग की वाणी और कटु सत्य एक ही साथ मुखरित हो उठे है। परिवर्तन के एक-एक सत्य को लेकर कवि बड़ी ही गम्भीरता से उसकी कटुता का अनुभव करता है। भारतीय दर्शन का खुला प्रतिपादन कवि ने परिवर्तन नामक कविता मे किया है। उसका विश्वास है कि एक अनन्त शक्ति—चिरन्तन शक्ति निरन्तर क्रीडा कर रही है। कोमल, वीभत्स तथा कठोर सभी उसमे मिलाकर, उस परिधि तक पहुँचकर, एक हो जाते है। फिर भी, वह चिरन्तन शक्ति भौतिकता से सर्वदा अछूता रहती है। इसके अतिरिक्त, 'परिवर्तन' की दूसरी विशेषता उसकी भाषागत विशेषता है, जहाँ कवि के स्वतंत्र चिंतन तथा अध्ययन के फलस्वरूप भावना के समकक्ष भाषा हो गई है। मेरा तो यह मत है कि परिवर्तन की विशेष परिस्थितियों मे पंत का सम्पूर्ण जीवन निहित है। भाषा एक गम्भीरता लिये हुए है जिसकी पृष्ठभूमि प्रतीकात्मकता तथा चित्रात्मकता की द्योतक है। जिस प्रकार पंत की आन्तरिक प्रवृत्तियाँ क्रमशः गम्भीर से गंभीरतम की ओर विकासोन्मुखी हुई है, पंत की भाषा भावानुकूल परिवर्तित होती गई है। इतना ही नहीं; शब्दो का मनोविज्ञान इस रूप मे प्रतिपादित किया गया है जहाँ आकर आलोचको की 'समझदारी' भूल-सी जाती है। उदाहरण के लिए विवर्तन और परिवर्तन प्रायः एक ही अर्थ के द्योतक

है। परन्तु विवर्तन का शब्द-मनोविज्ञान मानव की विवशता है और परिवर्तन का मनोविज्ञान साधारण गति मे सीमित है। इसी प्रकार विश्व, ससार, जगत् के पीछे अलग-अलग मनोविज्ञान है। परिवर्तन की विशेषता प्रकृति-चिंतन तथा आकर्षण से जीवन-चिंतन की ओर मुड़ने की है। कवि पथ मे आयी हुई वस्तुओ के प्रभाव से ही केवल प्रभावित नही हुआ है, वरन् उसका व्यक्तिगत चिंतन भी प्रस्फुटित हो गया है। तथ्य के प्रतिपादन की शैली भी कवि ने बदल दी है। वीणा मे कवि कुछ भावप्रधान होने के कारण जो देखता था उसके आध्यात्मिक पक्ष की ओर झुक जाता था; परन्तु परिवर्तन मे कवि ने सापेक्षिक दृष्टिकोण (तुलनात्मक) अपनाया है। वह अपने पैरो की जमीन को देखता है और फिर पीछे की ओर! उसके मन मे एक गहरी और गंभीर विवशता आ जाती है। वह सर्वदा वर्तमान की तुलना अतीत से करता चलता है। उसे अतीत अधिक आकर्षक भी लगता है। अतीत और वर्तमान का विवेचन ही उसकी साधना की सीमा नहीं है, वरन् अतीत और वर्तमान से आगामी की भी कल्पना करता है। अतीत का आकर्षण, सौन्दर्य, सुख-वैभव आज नहीं है और आज का जीवन भविष्य की गोद मे सीमित हो जायगा। हम विकास-प्रिय मानव नित्य-प्रति पतनोन्मुखी है। प्रभात संध्या मे, प्रणय-चुम्बन आँसुओ मे, मधु-ऋतु पतझड मे, जीवन मृत्यु मे परिवर्तित होता ही रहता है और यही जड़ विश्व का चेतन रहस्य है। सभी वस्तुएँ, एक-एक कण—अस्थिर है, परिवर्तनशील है"—

जगत् का अविरल हृत्कम्पन!
तुम्हारा ही भय सूचन;
निखिल पलकों का पतन
तुम्हारा ही आमंत्रण!
विपुल वासना विकच विश्व का मानस शतदल
छान रहे तुम, कुटिल काल कृमि-से घुस पल-पल;

तुम्हीं स्वेद सिंचित संस्थिति के स्वर्ण शस्य दल
दल मल देते, वर्षोत्पल बन, वांछित कृषि फल !
अये सतत ध्वनि स्पन्दित जगती का दिङ् मण्डल !
नैश गगन-सा सकल
तुम्हारा ही समाधिस्थल

'संसार की असारता का उल्लेख करते हुए कवि सुख-दुःख का चिंतन करता है। कवि स्पष्ट कहता है कि यदि ससार का सुख सर्वदा दुःख मे परिवर्तित होता रहता है तो दुःख भी तो सुख मे परिवर्तित हो जाता है। हमे किसी भी वस्तु की उपयोगिता का केवल एक पक्ष ही नहीं देखना चाहिए। कवि केवल परिस्थितियो और परिवर्तनगत जीवन का विवेचन एवं विश्लेपण ही नहीं करता, वरन् वह इस ओर भी संकेत करता है कि परिवर्तन की आवश्यकता संसार मे नवीनता ले आने के लिए है, क्योकि नवीनता ही आकर्पण की जननी है और इस प्रकार सृष्टि मे कोई भी वस्तु अनावश्यक नहीं है, क्योंकि आकर्पण तो हृदय के आनन्द का विरामस्थल है। 'परिवर्तन' नामक कविता मे पंत का जीवन-चिंतन है और उन्होने अपने अनुभव, अध्ययन और अध्यवसाय के आधार पर जीवन के कुछ निष्कर्प निकाले है—(१) विश्व का द्वन्द्वात्मक रूप है। इसलिए हमे तुलनात्मक दृष्टिकोण से ही इसका अध्ययन करना चाहिए। (२) परिवर्तन अनादिकाल से आये हुए नियम के कारण होता है—

हाय री दुर्बल भ्रान्ति !
कहाँ नश्वर जगती में शान्ति ?
सृष्टि ही का तात्पर्य अशान्ति !
जगत् अविरल जीवन संग्राम,
स्वप्न है यहाँ विराम—

(३) विश्व सुखों का संचित ढेर नहीं है। परिवर्तन के नियम के कारण सुख दुःख मे और दुःख सुख मे बदला करता है। दुःख

का एक पक्ष सर्वदा व्यक्तिगत चेतना के विकास मे सहायक होता है और दूसरा पक्ष चेतना को ढँक देता है। जब चेतना जाग्रत रहती है, दुःख भी सुख मे परिवर्तित होता रहता है और जब चेतना दबी रहती है, सुख दुःख मे परिवर्तित हो जाता है। (४) परिवर्तन विश्व का आवश्यक विधान है। इसके बिना जीवन नीरस और आकर्षण-हीन हो जायगा, क्योंकि नवीनता का रूप हमारे सामने नही आयगा। ऐसी अवस्था मे जीवन भार बन जायगा और कोई भी संसार की स्थिरता के साथ चलना पसन्द न करेगा। कवि मे भविष्यात्मक मानव-चिंतन के अंकुर यहीं दिखाई देने लगते हैं।'[१२]

वास्तव मे पंत की 'परिवर्तन' शीर्षक कविता हिन्दी-साहित्य मे अपना विशेष महत्त्व रखती है। महाकवि 'निराला' के शब्दो मे 'परिवर्तन किसी भी बडे कवि की कृति से निःसंकोच मैत्री कर सकता है।'[१३] भाव और भाषा की दृष्टि से यह कविता क्रान्तिकारिणी है। इसकी भाषा मे ओज है और भाव की दृष्टि से जीवन के विभिन्न रंगो का समावेश है। जीवन के सभी रंग—वीभत्स, करुण, शृंगार—सभाहित है। 'परिवर्तन' के लिए पत के ये शब्द अत्यन्त ही महत्त्व-पूर्ण है—'इस कविता-जगत् मे नित्य जगत् को खोजने का प्रयत्न मेरे जीवन मे जैसे परिवर्तन के रचनाकाल से प्रारम्भ हो गया था, 'परिवर्तन' उस अनुसंधान का केवल प्रतीक मात्र है।' संक्षेप मे 'पल्लव' की कविताओ को हम निम्नाकित श्रेणियों मे विभक्त कर सकते है—(क) भावना-प्रधान, (ख) कल्पना-प्रधान, (ग) प्रकृति-प्रधान, (घ) चिंतन-प्रधान और (ङ) प्रेम-प्रधान।

प्रो० शिवनन्दन प्रसाद के शब्दो मे 'पल्लव' की भावधारा की विशेषताएँ निम्नाकित है—१–इस संग्रह की प्रारम्भिक कविताओ मे

१२. श्री फूलदेव पाण्डेय, एम० ए०।

१३. प्रबन्ध-पद्म, पृ० सं० १२३।

पल्लव की विशेषताएँ

कवि के विरह-विदग्ध हृदय के करुण उद्गार हैं। 'ग्रन्थि' की भावना से अन्तर यह है कि 'पल्लव' मे कवि की वेदना का क्षेत्र जीवन और उसका हृदय ही नहीं, वरन् समस्त जडचेतन सृष्टि है। ये रचनाएँ भावप्रधान हैं। [उच्छ्वास, आँसू]

२—प्रकृति के विराट् क्षेत्र में प्रवेश करने के फलस्वरूप कवि की वेदना कुछ शमित हो जाती है और उसकी मनोवृत्ति कल्पना के सुन्दर सुकुमार चित्र खड़ा करने की ओर होती है।

[वीचि-विलास, स्वप्न, निर्झर आदि]

३—प्रकृति-दर्शन द्वारा कवि की चित्तवृत्ति उदात्त होती है और वह विश्व के समष्टिगत सौंदर्य-तत्त्व का साक्षात् करता है।

[अनंग]

४—इस व्यापक, चेतन सौंदर्य-तत्त्व की सहानुभूति का अनुभव उसे होता है। [मौन-निमंत्रण]

५—प्रकृति के असीम क्षेत्र के बीच दीर्घकालीन भावसाधना के उपरान्त, विश्व में व्यापक परिवर्तन के दृश्य देखने के फलस्वरूप कवि की अन्तर्दृष्टि खुल जाती है और सत्य का वास्तविक ज्ञान उसे होता है। अब उसकी भावना एकागी नही, क्योकि वह सम्पूर्ण सत्य को देख चुका है। अतः वह सयोग और वियोग, सुख और दुःख, जीवन और मरण मे अभेद देखता है। [परिवर्तन]

६—इस प्रकार 'गुंजन' की भावधारा की पूर्वपीठिका के रूप मे हम 'पल्लव' का भाव-विकास देखते है। इसी भावधारा का चरम विकास गुञ्जन मे द्रष्टव्य है।

'पल्लव' का अल्हड कवि 'गुंजन' मे एक गंभीर कवि के रूप मे आया। इसमे सन १९२६ से लेकर १९३१ के बीच की लिखी हुई कविताओं का संचयन है। 'गुजन' को पंत ने अपने प्राणों का 'उन्मन गुंजन' मात्र कहा है। कुछ कविताएँ इसमे बहुत पहले की

भी है। इसकी कविताओं के मर्मों से परिचित होने के लिए कवि के व्यक्तिगत जीवन की कुछेक जीवन-घटनाओं से परिचित होना अत्यावश्यक है। 'पल्लव' और 'गुंजन' के बीच कवि को रोगग्रस्त होकर मृत्युशय्या तक पहुँच जाना पड़ा था, पर कुछ समय के बाद रोग से मुक्त होकर कवि की आत्मा एक नई आशा से प्रदीप्त हो उठी। फलतः गुञ्जन मे जीवन के प्रति एक नया दृष्टिकोण का होना स्वाभाविक है। 'गुञ्जन' की रचना 'पल्लव' की शैली पर हुई अवश्य, परन्तु इसमे भावधारा की दिशा परिवर्तित है। सौंदर्यान्वेषण मे तल्लीन रहनेवाला पंत दर्शन की ओर प्रवृत्त हुआ। गुञ्जन के पूर्व प्रकृति के बिखरे हुए सौंदर्य से आश्चर्यचकित होनेवाला पंत का कवि 'आत्मा के चिरधन' की खोज मे निकल पड़ा और फलतः उसने 'गुञ्जन' के रूप मे अपने निकाले हुए निष्कर्ष को हिन्दी-काव्य-जगत् के समक्ष प्रस्तुत किया। 'गुञ्जन' के पहले कवि की कल्पना का संसार था हृदय, परन्तु अब आत्मा है। इसीलिए इसमे भावावेश की न्यूनता और चिंतन एवं मनन की मुख्यता है। पंत ने आधुनिक कवि की भूमिका मे स्वयं लिखा है—'पल्लव और गुञ्जन-काल के बीच मे मेरा किशोर भावना का सौंदर्य-स्वप्न टूट गया। दर्शनशास्त्र और उपनिषदो के अध्ययन ने मेरे रागतत्व मे मंथन पैदा कर दिया और उसके प्रवाह की दिशा बदल दी।' इसकी व्याख्या पंत के शब्दो मे सुनिए—'कविता के स्वप्न-भवन को छोडकर हम इस खुरदरे पथ पर क्यो उतर आए। इस युग मे जीवन की वास्तविकता ने जैसा उग्र आकार धारण कर लिया है उससे प्राचीन विश्वासो मे प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गये है। श्रद्धा-अवकाश मे पलनेवाली संस्कृति का वातावरण आन्दोलित हो उठा है और काव्य की स्वप्नजडित आत्मा जीवन की कठोर आवश्यकता के उस नग्न रूप मे सहम गई है। अतएव इस युग की कविता स्वप्नो मे

गुञ्जन : एक मध्यम कड़ी

नहीं पल सकती। उसकी जड़ों को अपनी पोषण-सामग्री ग्रहण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड रहा है और युग-जीवन ने उसके चिर-संचित सुख स्वप्नो को जो चुनौती दी है उसको उसे स्वीकार करना पड़ रहा है।' १४

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि पंत की कल्पना धरती पर आकर टिक गई। वह मानव-जीवन का गायक बन गया। अतः वह सुख-दुःख, हानि-लाभ, संयोग-वियोग, जीव-जगत्, मुक्ति और ईश्वर आदि के सम्बन्ध मे एक नये ढग से सोचने को बाध्य हुआ। अब कवि चिंतनशील हो गया। उसकी भावना कमजोर होने लगी और चिंतना प्रबल। अतएव 'गुंजन' भावना और चिंतन का समन्वित रूप है। यही समन्वयवादी भावना 'गुञ्जन' मे पंत की भावधारा का पृष्ठाधार है। 'इस समन्वय का परिणाम यह होता है कि कवि मध्यम मार्ग का पक्षपाती होता है और प्रतिपल साधना द्वारा व्यक्तित्व के उत्कर्ष को जीवन का सार्थकता का आधार मानता है।' 'गुञ्जन' का कवि इस तथ्य से परिचित है कि जीवन मे दुःख का कारण अतिशय अमर्य्यादित अभिलाषाये है —

वढ़ने की अति इच्छा मे जाता जीवन से जीवन।

'अति' से बचना ही यथार्थ सुख है। कवि ने तो यहाँ तक कहा है कि सुख का आधिक्य भी दुःख का कारण बनता है—

जग पीड़ित है अति-दुख से, जग पीड़ित रे अति-सुख से
मानव-जग मे बँट जावे दुख सुख से औ' सुख दुख से।

'इस मध्यम मार्ग को अपनाकर ही मनुष्य सदैव आध्यात्मिक आनन्द मे निमग्न रह सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता मे भी भगवान ने कहा है कि सुख दुःख मे समता का नाम ही योग है, यद्यपि सुख मोह और आकर्षण है तथा दुःख आत्मा का भोजन है।'

---

१४. रूपाभ (प्रथम अङ्क)--पंत की लिखी हुई सम्पादकीय टिप्पणी

दुख इस मानव आत्मा का
रे नित का मधुमय भोजन।

ईश्वर पर कवि को विश्वास है। बंधन और मुक्ति के सम्बन्ध मे कवि की भावना वेदात की अपेक्षा वैष्णव धर्म की पद्धति के अधिक निकट है। कवि के लिए बंधन ही मुक्ति है और मुक्ति ही बंधन। गुञ्जन एक प्रकृति-काव्य नही, प्रत्युत मानव-काव्य है। नारी के प्रति कवि का दृष्टिकोण अत्यन्त नवीन है। इसमे शरीर-नारी का अंकन नही, वरन् भाव-नारी का अंकन हुआ है। समष्टि रूप से 'गुञ्जन' मे कल्पना के साथ-साथ चिंतन की प्रधानता है, उसकी कविताएँ अनुरंजन के साथ मनन की जाती है। 'गुञ्जन मे प्रायः तीन प्रकार की कविताएँ हैं, सबसे पहले लगभग पन्द्रह कविताओ मे सुख-दुःख का समन्वय या मानव-महत्व की स्वीकृति है। दूसरी कक्षा मे लगभग चौदह कविताएँ प्रेयसि के प्रति प्रेम-निवेदन की है और तीसरा 'वैच' प्रकृति-सम्बन्धी कविताओ का है। इनके अतिरिक्त तीन-चार कविताएँ विविध है। इस प्रकार गुञ्जन निर्धारित सीमाओ मे ही प्रायः चला है।'[१५]

संक्षेप मे 'गुञ्जन' की भावधारा की निम्नलिखित विशेपताएँ है—

'गुंजन' की विशेषताएँ

(क) 'गुंजन' का कवि पहले भावुक था, परन्तु इसमे वह विचारशील कवि बन गया है। (ख) इसमे पूर्व की रचनाओ के समान वैयक्तिक प्रेम के अन्तर्गत विरह-मिलन, स्वप्न और आकाक्षा की शत-सहस्र उद्भावनाएँ नही है, प्रत्युत वाह्य जगत् की वास्तविकता एवं जीवन की असलियत है। (ग) इसमे भावना और चिंतना का सम्मिलित रूप है; पर इसके साथ-साथ कवि के दार्शनिक विचारो मे पर्याप्त सरसता भी है। (घ) चिंतनशील हो जाने के कारण कवि का दृष्टिकोण अनेक

१५. पंत का काव्य और युग : यशदेव, पृ० सं० १२८

भावों और पहलुओं के सम्बन्ध मे बदल गया है। वह बाह्य सौंदर्य का गायक न बनकर अन्तःसौंदर्य का गायक हो गया है। जैसे—अप्सरि, भावी पत्नी के प्रति, मधुवन आदि। (ङ) इसमे कवि का प्रेम शारीरिक धरातल पर नहीं है, वरन् उससे ऊपर की वस्तु है। (च) इसमे कवि की आशावादी भावना मुखरित है। (छ) 'कवि की भावधारा की सबसे बडी विशेषता है—धरातल का उत्कर्ष, जिसके कारण उसका प्रेम व्यक्तिगत आकाक्षा के रूप मे नहीं रह जाता, वरन् विश्व-कल्याण की साधना बन जाता है।' (ज) कुछ कविताओ को छोड़ कर शेष कविताएँ छोटी है जो गीतिकाव्य की दृष्टि से सुन्दर उतरी है।

वास्तव मे गुंजन छायावाद और प्रगतिवाद के सधिस्थल पर खडा है, यहीं से पत मानव-जीवन का कवि बन जाता है और सुखी मानव-समाज का निर्माण करना चाहता है। इसमे आधुनिकतम भाव-दिशा की ओर संकेत है। इसलिए यह उनकी समस्त कृतियों की मध्यम कडी है।

'युगान्त' से कवि की भावधारा मे दिशान्तर

'युगान्त' के प्रकाशन से छायावाद का पराभव और प्रगतिवाद का शंखनाद होता है। इसमे सन् १९३४ से १९३६ तक की लिखी हुई कविताओ का संग्रह है। इसकी अनेक कविताएँ गुजन की ही परम्परा मे आती है, क्योकि वे चितन-प्रधान है। इसमे प्रगति-युग के प्रारम्भ होने की भूमिका है। कवि स्वयं कहता है—'युगान्त मे मैं निश्चय रूप से इस परिणाम तक पहुँच गया था कि मानव-सभ्यता का पिछला युग अब समाप्त होने को है और नवीन युग का प्रादुर्भाव अवश्यम्भावी है।' 'कवि के सौंदर्य-युग मे चितन का आरम्भ 'गुञ्जन' से होता है। 'गुञ्जन' मे उसके चितन मे सत्य की व्यक्तिगत साधना है, ज्योत्स्ना मे उसका सार्वभौम रूप है और युगान्त के चिंतन की प्रधानता मानव के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण के

रूप मे प्रकट हुई है। इसलिये 'युगात' कवि की चिंतन-प्रधान कविताओ का संग्रह है। इसमे मात्र 'सुन्दरम्' ही कवि का आदर्श नही है। वह 'सत्यम्' और विशेपतया 'शिवम्' की ओर भी आकर्षित होता है।'[१६] युगान्त का कवि गुञ्जन मे व्यक्तिगत साधना पर जोर देता था, पर इसमे आकर कवि की दृष्टि समष्टि की पीडाओ की ओर गई जिसके संवेदन से उसका हृदय आन्दोलित हो उठा। फलतः कवि का हृदय लोक-मंगल की भावना से भर गया। डा० नगेन्द्र के शब्दो मे—'पल्लव का करुणाक्लिष्ट भाव जो गुञ्जन मे आकर समझौते का रूप धारण कर चुका था, युगान्त मे आकर पूर्णतया मागलिक कामनाओ का वाहक हो गया है। इन कृतियो मे कवि जगत् के जीर्ण उद्यान मे मधु-प्रभात लाने की शुभाकाक्षा बार-बार करता हुआ देखा जाता है। उसका करुणातप्त हृदय मानव-हित से पूर्ण हो गया है। वह मानवता के विकास के द्वारा जीवन की पूर्णता स्थापित करने की शुभेच्छाओ से आकुल है।[१७] युगान्त की पहली ही कविता मे कवि मागता है—

द्रुत झरो जगत् के जीर्ण पत्र हे स्रस्त ध्वस्त, हे शुष्क शीर्ण!
हित ताप-पीत मधुवात-भीत, तुम वीतराग, जड़ पुराचीन!
निष्प्राण विगत युग! मृत विहंग! जग-नीड़ शब्द औ' श्वास-हीन,
च्युत, अस्त-व्यस्त पंखो से तुम, झर-झर अनंत मे हो विलीन!
कंकाल जाल जग मे फैले फिर नवल रुधिर, पल्लव लाली!
प्राणो की मर्मर से मुखरित जीवन की मांसल हरियाली!
मंजरित विश्व मे यौवन के जग का पिक मतवाली
निज अमर प्रणय स्वर मदिरा से भर दे फिर नवयुग की प्याली!

नये युग के आगमन से कवि को आशा है, तभी वह उसकी शक्ति

---

१६. श्री गोपाल कृष्ण कौल
१७. सुमित्रानन्दन पंत, पृ० ८१

और सौन्दर्य का गीत गाता है। लेकिन 'मानव-जग आज जड बन्धनों मे जकडा हुआ कराह रहा है, अतएव वह उसी की जागृति की कामना करता है। कोई भी वस्तु उसी अंश तक उसे प्रिय है जहाँ तक वह मानव के लिए कल्याणकारी है, इसीसे वह कोयल से मधुर नही, आग्नेय गीत गाने को कहता है, क्योकि उसे विश्वास है कि इसी से नवीन मानवता का जन्म होगा—

गा कोकिल, बरसा पावक कण,
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन, ध्वंस-भ्रंश जग के जड़ बंधन,
पावक-पग धर आए नूतन, हो पल्लवित नवल मानव-मन।

और यह विश्वास करता है कि यह नवोदिता मानवता अखण्ड और अभिजात्य होगी, उसमे राष्ट्र, जाति तथा वर्गगत भेद नहीं रहेगे। वह तो सोचता है, 'मनुष्य का परिचय क्या मनुष्य शब्द ही काफी नहीं? वह अमर-शाश्वत ज्योति है, उसका विभाजन क्या मिथ्या और कृतिम नही?' ऊर्ध्वोन्मुख मानवता! तुम्हारा अभिनव सौंदर्य-ज्योति के साथ उदय हो।
(यह पूँजीवादो विचारधारा ही है!)—

गा कोकिल संदेश सनातन
मानव दिव्य स्फुलिंग चिरन्तन, वह न देह का नश्वर रज
देशकाल हैं उसे न वन्धन, मानव का परिचय मानव-पन।

वह जडवाद से अभिभूत मानवता का परित्राण चाहता है, क्योकि इसीसे आज ये युद्ध-गर्जनाएँ, उत्पीडन और अत्याचार दिखाई पड़ते है, मानवात्मा आज जड वन्धनो मे कराह रही है, 'उसका परित्राण आवश्यक है—

जड़वाद जर्जरित जग मे, अवतरित हुए आत्मा महान,
यंत्राभिभूत जग में करने मानव जीवन का परित्राण।

...... आज उसके लिए मानव ही प्रधान है—वही एकमात्र महत्व है, उसी का सौंदर्य गेय है। विहगो का उपयोग वह श्रमजीवियों

के निरस्त जीवन को नव प्रेरणा-दाता के रूप में ही देखता है —

आ, गा गा शत शत सहृदय खग,
भर रहे नया इसमें जीवन,
ढीली है जिनकी रग रग।

इस प्रकार युगांत में प्रायः सर्वत्र मानवता के नवयुग का ही आवाहन है, किन्तु यह पूँजीवादी मानवतावाद और उदारतावाद से अधिक कुछ नहीं।'[१८] इसमे प्रकृति के प्रति कवि का दृष्टिकोण बदला हुआ है और ऐन्द्रिय चित्रण का अभाव है। इस कोटि की कविताओं में है—वसंत, तितली, संध्या, शुक्र, छाया, बाँसो का झुरमुट आदि। वसंत का हर्षोत्फुल्ल एवं आह्लादपूर्ण चित्र देखिये—

पल्लव-पल्लव में नवल रुधिर
पत्रों में मांसल रग खिला,
आया नीली-नीली लौ से
पुष्पो के चित्रित दीप जला!

\+ + +

कलि के पलको में मिलन स्वप्न
अलि के अन्तर मे प्रणय गान,
लेकर आया, प्रेमी वसंत,
आकुल जड़चेतन स्नेह-प्राण।

पंत की लेखनी द्वारा छाया की गहनता का अंकन अत्यन्त ही व्यंजनापूर्ण हो पाया है, यथा—

पट पर पट केवल तम अपार,
पट पर पट खुले न मिला पार।

युगान्त मे कवि की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति बहिर्मुखी हो गई, वह व्यक्ति से समाज की ओर आया। युग की नवीन प्रवृत्तियों ने छायावाद

---

१८. पंत का काव्य और युग . यशदेव, पृ० सं० १५७-५८

की सौंदर्य-कल्पना को झकझोर कर उखाड़ फेंका। तब पंत के कवि को यह स्वीकार करना पड़ा कि छायावाद इसलिए अधिक नहीं रहा कि उसके पास भविष्य के लिए उपयोगी नवीन आदर्शों का प्रकाशन, नवीन भावना का सौंदर्यबोध और नवीन विचारों का रस नहीं था। यह काव्य न रहकर केवल अलंकृत संगीत बन गया था। द्विवेदी-युग के काव्य की तुलना में छायावाद इसलिए आधुनिक था कि उसके सौन्दर्यबोध और कल्पना में पाश्चात्य साहित्य का पर्याप्त प्रभाव पड़ गया था और उसका भाव-शरीर द्विवेदी युग के काव्य की परम्परागत सामाजिकता से पृथक् हो गया था। किन्तु वह नए युग की सामाजिकता और विचारधारा का समावेश नहीं कर सका था। उसमें व्यावसायिक क्रांति और विकासवाद के बाद का भावना-वैभव तो था, पर महायुद्ध के बाद की 'अन्न-वस्त्र'-धारणा (वास्तविकता) नहीं आयी थी। उसके 'हास अश्रु आशाऽकांक्षा', 'खाद्यमधुपायी' नहीं बने थे। इसलिए एक ओर वह निगूढ, रहस्यात्मक भावप्रधान (Subjective) और वैयक्तिक हो गया और दूसरी ओर केवल टेकनीक और आवरणमात्र रह गया। दूसरे शब्दों में नवीन सामाजिक जीवन की वास्तविकता को ग्रहण कर सकने से पहले, हिन्दी कविता, छायावाद के रूप में, ह्रास-युग के वैयक्तिक अनुभवों, ऊर्ध्वमुखी विकास की प्रवृत्तियों, ऐहिक जीवन की आकांक्षा संबंधी स्वप्नों, निराशाओं और संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने लगी, और व्यक्तिगत जीवन-संघर्ष की कठिनाइयों से क्षुब्ध होकर, पलायन के रूप में, प्राकृतिक दर्शन के सिद्धान्तों के आधार पर, भीतर-बाहर में, सुख-दुःख में, आशा निराशा, संयोग और वियोग के द्वन्द्वों में सामंजस्य स्थापित करने लगी। सापेक्ष की पराजय उसमें निरपेक्ष की जय के रूप में गौरवान्वित होने लगी।'[१९] फलतः युगान्त की रचना के पीछे यही इतिहास है। युगान्त के सम्बन्ध में कवि ने स्वयं लिखा है कि

१९. आधुनिक कवि : पर्य्यालोचन, भाग २, पृ० सं० ११-१२

'मैने जिस नवीन क्षेत्र को अपनाने की चेष्टा की है, मुझे विश्वास है, भविष्य मे मै उसे अधिक परिपूर्ण रूप मे ग्रहण एवं प्रदान कर सकूंगा।'

संक्षेप मे युगान्त की भावधारा इस प्रकार है जिसके आधार पर ही युगात और ग्राम्या की रचना हुई—(क) गुंजन मे कवि की साधना व्यक्तिगत थी, पर युगात मे जन-कल्याण की भावना समाहित है। (ख) रूढ़िगत मान्यताओ का विध्वंस एव नवीन आदर्श की प्रतिष्ठा करने का प्रयास किया गया है। (ग) इसमे मानव-सस्कृति के मान (Values) वर्त्तमान मान से भिन्न होगे। मानव की महानता की कसौटी धन न होकर आत्मा की विकास-दशा होगी। (घ) इस नवीन संस्कृति के आधार पर होगे मानव मात्र की समानता, स्वतंत्रता एव परस्पर प्रेम। (ङ) नवीन आदर्शा के रूप मे कवि ने गाधीजी को देखा है। (च) इसमे प्रकृति प्रधान विषय नहीं है, क्योंकि इसमे कवि मानव-जीवन का गायक बन गया है। फिर भी कुछ प्रकृति के सुन्दर चित्र मिलते है।

युगांत की विशेषताएँ

यो तो 'युगान्त' मे ही कवि की वाणी बदल गई, परन्तु 'युगवाणी' से कवि ने एक नयी सृष्टि की रचना प्रारंभ की। 'युगवाणी' मे सन् १९३७ से १९३९ के बीच की लिखी हुई रचनाएँ सगृहीत है। इसमे ८२ कविताओ का संचयन है। पंतजी के शब्दो मे कवि ने 'युगवाणी' मे युग के गद्य को वाणी देने का प्रयत्न किया है और साथ-साथ 'युग को मनोवृत्ति का आभास' भी। यही कारण है कि इसमे तत्कालीन राजनीति के 'वादो' का स्वर मुखर हुआ है और वे है—मार्क्सवाद, गाँधीवाद, साम्राज्यवाद, समाजवाद और भौतिकवाद। इसमे इन सभी 'वादो' का समन्वित स्वर फूट पडा है। इसमे समाज के प्रत्येक वर्ग की गाथा है और नारी-समाज के उत्थान के आन्दोलन की विचारधारा की अभिव्यक्ति है। इसमे प्रकृति-विषयक कविताएँ भी है और कवि ने निराला, भारतेन्दु, द्विवेदी आदि जैसे महान साहित्यकारो के प्रति श्रद्धा के दो फूल चढ़ाये है।

युगवाणी

'युगवाणी' की भावधारा का विश्लेषण करते हुए प्रो० शिवनन्दन प्रसाद ने लिखा है—'कहा जाता है कि 'युगान्त' मे पंतजी के काव्य-जीवन के एक युग के अंत की और दूसरे के आरंभ की सूचना मिलती है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि युगान्त के पूर्व और पश्चात् की रचनाओ मे कोई सम्बद्ध विकास-क्रम नहीं अथवा 'युगान्त' के पूर्व की भावधारा से उसके पश्चात् की भावधारा सर्वथा विच्छिन्न है। वस्तुतः बात तो यह है कि जिस अंतस्-साधना की अभिव्यक्ति हम 'गुंजन' और 'युगांत' मे पाते है उसीका बाह्य व्यावहारिक रूप 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की रचनाओ मे परिलक्षित है। 'गुंजन' मे अभिव्यक्त सुख-दुःख की समता मे साधना और नैसर्गिक मध्यम मार्ग की सौन्दर्यानुभूति को ही 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' मे व्यावहारिक रूप प्रदान किया गया है। आत्मा की साधना ही लोक-रंजक बन गई है।......'युगवाणी' को प्रगतिशील काव्य कहा जाता है। यदि मार्क्सवादी सिद्धातो की साहित्यगत अभिव्यक्ति ही प्रगतिवाद है तो निश्चय 'युगवाणी' मे प्रगतिशील काव्य के लक्षण मिलेगे। साम्राज्य-वाद, धनपति, मध्यवर्ग, कृषक, श्रमजीवी आदि कविताएँ इस दृष्टि से दर्शनीय है। 'उद्बोधन', 'मार्क्स के प्रति' और 'भूत-दर्शन' शीर्षक कविताओं मे भी मार्क्सवादी सिद्धातो की व्यंजना है। ऊपर से देखने पर लगता है कि कवि की भावधारा ने एक नया रूप लिया है, एक नई दिशा ग्रहण की है। आध्यात्मवाद को छोड़कर कवि भौतिकवादी बन गया है और मार्क्सवाद के अन्तर्गत इतिहास की भौतिक व्याख्या और वर्ग-संघर्ष के जो सिद्धात है, उन्हे मान लिया है। आत्मा को छोड़ अब वह शरीर को आदरित करने लगा है।

'गुञ्जन' मे मन की जिस साधना का और जिस नैसर्गिक सौदर्यानुभूति का इतना महत्त्व था, उसे कलाकार ने अचानक छोड़ दिया है और अब वह रोटी का राग अलापने लगा है। आश्चर्य होता है इस परिवर्तन को देखकर। सोचते है लोग कि कैसे संभव है कि किसी

कलाकार के दृष्टिकोण का ऐसा मौलिक रूपान्तर हो और वे इस परिणाम पर पहुँच पडते है कि 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की कविताओ मे जान नही है। इन रचनाओ मे कलाकार का मस्तिष्क बोलता है, हृदय नही। कलाकार के व्यक्तित्व (Personality) का स्वाभाविक उच्छलन इनमे है केवल युग के फैशन का तकाजा, अतः ये है 'थर्ड-रेट' कविताएँ। लेकिन पंत की कविताओ के ऊपर-ऊपर देखनेवाले भूलते है। वे पंत के काव्य की प्रेरणा को यदि समझने की कोशिश करे, यदि शब्दो के अर्थ तक ही सीमित न रहकर उनके कारण-भूत-भावधारा को समझने का प्रयत्न करे जिससे पंत के समस्त आर्थिक-राजनैतिक सिद्धात उद्भूत है तो वे पायेंगे कि 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की कविताओ मे भी एक आध्यात्मिक अतर-दर्शन है।[२०] इस प्रकार देखेंगे कि शुरू से लेकर अब तक की रचनाओ मे एक ही अविच्छिन्न भावधारा का प्रवाह है।

'युगवाणी' मे पंत ने मार्क्सवाद का पल्ला पकड़ा है, परन्तु गाँधीवाद का आँचल सरकने नही दिया है। 'युगवाणी' की पहली कविता है 'बापू', जिसमे पंत का स्वर सशयालु है, देखे—

सत्य अहिंसा से आलोकित होगा मानव का मन !
अमर प्रेम का मधुर स्वर्ग बन जावेगा जन जीवन !
आत्मा की महिमा से मंडित होगी नव मानवता !
प्रेम-शक्ति से चिर निरस्त हो जावेगी पाशवता !

लेकिन कवि भूतवाद और आध्यात्मवाद के बीच समन्वय की कल्पना करता है और यह समन्वय समाजवाद-गाँधीवाद कविता मे कुछ विस्तार के साथ चित्रित किया गया है। साम्यवाद का आधार है भौतिकतावाद, परन्तु कवि संकीर्ण भौतिकवादियो के प्रति व्यंग्य करता हुआ कहता है—

२०. पंतजी का गुञ्जन, पृ० १२२-२४

आत्मवाद पर हँसते हो भौतिकता का रट नाम ?
मानवता की मूर्ति गढ़ोगे तुम सँवार कर चाम ?
वस्तुवाद ही सत्य, मृषा सिद्धांतवाद, आदर्श ?
वाह्य परिस्थितियों पर आश्रित अन्तर का उत्कर्ष ?
मानव कभी भूल से भी क्या सुधर सकी है भूल ?
सरिता का जल मृषा सत्य केवल उसके दो कूल ?
आत्मा औ' भूतों में स्थापित करता कौन समत्व ?
वहिरंतर आत्मा भूतों से है अतीत वह तत्त्व ?
भौतिकता, आध्यात्मिकता केवल उसके दो कूल
व्यक्ति-विश्व से, स्थूल सूक्ष्म से परे सत्य के मूल !

'युगवाणी' के कवि ने गाँधी और मार्क्स के बीच मे अपना एक स्वतंत्र मार्ग स्थापित किया है, क्योंकि गाधीवाद और मार्क्सवाद दोनो अपूर्ण है। मार्क्स ने जिस नए सत्य का उद्घाटन किया है, उस सम्बन्ध मे कवि कहता है---

विकसित हो, बदले जब जब जीवनोपाय के साधन,
युग बदले, शासन वदले, करगत सभ्यता समापन !
सामाजिक सम्वन्ध वने नव अर्थ भित्ति पर नूतन;
नव विचार, नव रीति-नीति, नव नियम, भाव, नवदर्शन !
साक्षी है इतिहास,—आज होने को पुनः युगान्तर,
श्रमिकों का साधन होगा अव उत्पादन यंत्रो पर !!
वर्गहीन सामाजिकता देगी सबको सम साधन,
पूरित होंगे जन के नव-जीवन के निखिल प्रयोजन !
दिग-दिगंत मे व्याप्त, निखिल युग-युग का चिर गौरव हर
जन संस्कृति का नव विराट् प्रासाद उठेगा भू पर !

और साथ-ही-साथ पंत ने साम्यवाद का अभिनन्दन किया है—

साम्यवाद के साथ स्वर्णयुग करता मधुर पदार्पण,
मुक्त निखिल मानवता करती मानव का अभिवादन !

परन्तु कवि ने साम्यवाद को भारतीय रंग मे भिगोए रखा है। यो तो पंत की विचारधारा प्रगतिवादी होते हुए भी साम्यवादियो से भिन्न है। इसमे पंत का चिन्तन पूर्णतया स्वतंत्र एव मौलिक है। इस सम्बन्ध मे प्रशंसा करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि 'यह देख कर प्रसन्नता होती है कि छायावाद के बँधे घेरे से निकल कर पंतजी ने जगत् की विस्तृत अर्थभूमि पर स्वाभाविक स्वच्छन्दता के साथ विचरने का साहस किया है।' अस्तु, इस दृष्टि से उनकी रचनाओ मे 'युगवाणी' का अपना महत्त्व है।

स्वयं पत के कवि ने ''युगवाणी' को विश्वमूर्ति कहा है जिससे वह जाति-मन से मुक्त होकर युग के विश्वमन एव लोकमन को अपने स्वरो मे मूर्त्त कर सके, मनुष्य की अंतश्चेतना मे जो सत्य अभी अमूर्त्त है उसे रूप दे सके: जीवन-सौन्दर्य की जो प्रतिमा आज अन्तर्मन मे विकसित हो रही है उसे भौतिक जीवन मे साकार कर सके, और हमारा मनस्वर्ग पृथ्वी पर उतर आए।'

'युगवाणी' की विशेषताएँ

अब हम सक्षेप मे कवि द्वारा 'युगवाणी' मे दिए गए विचारो को देते है जिससे कवि की 'युगवाणी' सम्बन्धी विचारधारा और भी स्पष्ट हो जायगी—(क) भूतवाद और आध्यात्मवाद का समन्वय जिससे मनुष्य की चेतना का पथ प्रशस्त बन सके। (ख) समाज मे प्रचलित जीवन की मान्यताओ का पर्यालोचन एव नवीन संस्कृति के उपकरणो का सग्रह। (ग) पिछले युग के उन मृत आदर्शों और जीर्ण रूढ़ियो की तीव्र भर्त्सना जो आज मानव के विकास मे बाधक हो रही है। (घ) मार्क्सवाद तथा फ्रायड के प्राणि-शास्त्रीय मनोदर्शन का युग की विचारधारा पर प्रभाव, जन-समाज का पुनः संगठन एवं दलित लोक-समुदाय का जीर्णोद्धार। (ङ) वहिर्जगत् के साथ अन्तर्जीवन के संगठन की आवश्यकता, राग-भावना का विकास तथा नारी-जागरण। (च) युगवणी में काव्यात्मकता का अभाव नही है, प्रत्युत उसका काव्य

अप्रच्छन्न, अनलंकृत और विचार भावना-प्रधान है। (छ) युगवाणी की भाषा सूक्ष्म है, उसमे विश्लेषण का सौन्दर्य है।

'युगवाणी' के पश्चात् 'ग्राम्य' का प्रकाशन हुआ। इसमे 'युगवाणी' के पश्चात् १९४० के मध्य तक की ५३ कविताओं का संग्रह है। इसमे ग्राम्य-जीवन सम्बन्धी रचनाएँ संगृहीत है। 'युगवाणी' मे जो आधुनिक प्रगतिवादी सिद्धान्तो का आरम्भिक रूप है, उसको बलिष्ठ बनाने के लिए कवि ने 'ग्राम्या' को जन्म दिया।

ग्राम्या

डा० नगेन्द्र के शब्दो मे 'युगवाणी' प्रगतिवादी पंत का सिद्धान्त वाक्य था—'ग्राम्या' उसका प्रयोग। 'युगवाणी' मे पंतजी अपने नवीन सिद्धान्तों की रूपरेखा निश्चित कर रहे थे। सिद्धान्त अमूर्त्त होते है, इसलिए 'युगवाणी' मे रस से पुष्ट मास नहीं है। 'ग्राम्या' तक वे सिद्धान्त स्थिर कर चुके और अब उन्होंने उसके प्रयोग के लिए एक मूर्त्त आधार चुन लिया। स्वभावतः ग्राम्या की स्नायुओ मे कवित्त्व का गाढा रस प्रवहमान है। उससे अङ्ग भरे हुए और यौवन पीन है—

हैं मांस-पेशियो मे उसके दृढ़ कोमलता
संयोग अवयवो मे, अश्लथ उसके उरोज।
कृत्रिम रति की है नही हृदय में आकुलता,
उद्दीप्त न करता उसे भाव कल्पित मनोज।

यह मानो ग्राम्या की महत्त्वमयी व्याख्या है।'[21] प्रकृति का स्वतंत्र गायक अब कल्पना के मंच पर न बैठ कर यथार्थता की भूमि पर आकर ग्रामीण जीवन के चित्रों को खींचने की ओर प्रवृत्त हुआ। इसमे ग्राम्य-जीवन का जो चित्रण, निरीक्षण एवं आलोचन है, वह एक साधारण पाठक की दृष्टि से नहीं है जैसा की कवि ने यथार्थवाद के नाम पर लिखा है। इसमे वह निमग्नता, वह गति नही जिसमे पाठक का हृदय घुल-मिल जाय। भारतीय ग्रामीण जन-जीवन के साथ

---

२१. सुमित्रानंदन पंत, पृ. सं. २२४-२५

तादात्म्य स्थापित कर ये कविताएँ नहीं लिखी गई है, इसका उत्तर पतजी के शब्दो मे है—'ग्रामो की वर्तमान दशा मे वैसा करना प्रतिक्रियात्मक साहित्य को जन्म देना होता।' खैर, जो भी हो, उन्होने अपने महल के वातायन से भारतीय ग्रामीण-जीवन का चित्र आँका है। कला के विचार से साप्ताहिक 'कर्मवीर' ने उस पर जो अपनी सम्मति दी है, उसी के शब्दो मे—'ग्राम्या पके हुए धान से लहलहे खेत के समान है। उसमे ग्रामीण जीवन की आर्द्रता है। 'एस्थीट' कवि ने कई सुन्दर चित्र-राग आलेखित किये है। भाषा और भी सरल, ओजवती और सजीव हो उठी है। कई जगह ग्रामीण शब्दो का भी प्रयोग है जो 'लोकल कलर' उत्पन्न करता है। 'धोबियो का नाच', 'चमारो का नाच', 'कहारो का रुद्र नर्तन', इफेक्ट की दृष्टि से अत्यन्त ललित चीजे है। 'भारत माता ग्रामवासिनी', 'अहिसा', 'चरखा-गीत' सुन्दर संघगीत (कोरस) है।'

'ग्राम्या' का जो जन्म हुआ, उसकी पृष्ठभूमि (Back-ground) 'युगवाणी' है। समयानुकूल जिन-जिन विचार-धाराओ एवं परिस्थितियो का काफी प्रभाव पडा, उसीका रंग इस पर है। उन्होने 'ग्राम-जनता को 'रक्त मास के जीवो' के रूप मे नही देखा है, एक मरणोन्मुखी संस्कृति के अवयव-स्वरूप देखा है और ग्रामो को सामत-युग के खंडहर के रूप मे।' देखे—

यह तो मानव लोक नही रे यह है नरक अपरिचित
यह भारत का ग्राम, सभ्यता, संस्कृति से निर्वासित।

\+ + +

मानव दुर्गति की गाथा से ओत-प्रोत, मर्मातक
सदियो के अत्याचारो की सूची यह रोमांचक।

—इसमे जीवन की सच्ची घटनाओ के साथ-साथ रंग-परिज्ञान (Sense of colour) का सुन्दर रूप प्रस्तुत किया गया है। उन्होने ग्राम्य जानता की मरणोन्मुखी संस्कृति को तो देखा ही, परन्तु उनके

प्रति उन्होंने अपनी बौद्धिक सहानुभूति (Intellectual sympathy) भी प्रदर्शित की है।

आज असुन्दर लगते सुन्दर प्रिय पीड़ित शोषित जन
जीवन के दैन्यों से जर्जर मानव मुख हरता मन !

आदि पंक्तियो मे हार्दिकता कूट-कूट कर भरी हुई है। कवि का लक्ष्य है—पुनर्जागरण, पर वह सास्कृतिक क्राति की ओर लक्ष्य करता है। वह उनके प्रति सहानुभूति ही प्रदर्शित नहीं करना चाहता, प्रत्युत उन ग्रामीणों की दुर्गति का सुधार करना भी पंत का उद्देश्य है। जिस प्रकार डी० एच० लारेन्स ने निम्नकोटि की मानवता का अविकल चित्र खींचा है उसी प्रकार पंत ने भी 'ग्राम्या मे ग्राम-जनता के रूप की बॉकी झॉकी ली है। 'ग्राम्या' के पूर्व पंत मे जो आकार-प्रियता थी, वह अब चित्र-रूप मे उतर आयी। 'उसकी सर्वहारा मशीन के सम्पर्क मे आई जनता की बीमारी उनके राजनीतिक वर्ग-संस्कार है, जिनका लारेन्स ने चित्रण किया है। अपने देश के जन समूह (mob) की बीमारी उससे कही गहरी, आध्यात्मिकता के नाम में रूढ़ि-रीतियों एवं अंधविश्वासों के रूप मे पथराए हुए (फॉसिलाइज्ड) उनके सास्कृतिक सस्कार है। लारेन्स के पात्र अपनी परिस्थियो के लिए सचेतन और सक्रिय है; 'ग्राम्या' के दरिद्रनारायण अपनी परिस्थितियों ही की तरह जड और अचेतन।

वज्रमूढ़, जड़भूत, हठी, वृष बांधव कर्षक,
ध्रुव, ममत्व की मूर्ति, रूढ़ियो का चिर रक्षक।

फिर लारेन्स जीवन के मूल्यो के संबंध मे प्राणिशास्त्रीय मनोविज्ञान (बाएलॉजिकल वॉट) से प्रभावित हुआ है,[२२] परन्तु पंत का कवि 'एतिहासिक विचार धारा से, जिसका कारण स्पष्ट ही है, कि वह 'पराधीन देश का कवि' है। 'लारेन्स जहॉ द्वन्द्व-पीड़न (सेक्स रिप्रसन)

२२. आधुनिक कवि, भाग २, भूमिका, पृ० ३०-३१।

से मुक्ति चाहता है' पंत 'राजनीतिक आर्थिक शोषण से'। खैर, जो भी हो. कवि ने ग्रामीणो के प्रति हृदयहीनता नही प्रदर्शित की है।

पंत का कवि ऐतिहासिक विचारधारा से अधिक प्रभावित इसलिए भी हुआ है कि 'उसमे कल्पना के स्रोत को विशद और वास्तविक पथ मिलता है। छायावाद के दिशाहीन शून्य-सूक्ष्म आकाश मे अति-काल्पनिक उडान भरने वाली अथवा रहस्यवाद के निर्जन अदृश्य शिखर पर कालहीन विराम करनेवाली कल्पना को एक हरी-भरी ठोस जनपूर्ण धरती मिल जाती है।

'ताक रहे गगन ? मृत्यु नीलिका गहन गगन ?
निःस्पंद शून्य, निर्जन, निःस्वन ?
देखो भू को, स्वर्गिक भू को !
मानव, पुण्य - प्रसू को ।'—

इसी लक्ष्य-परिवर्तन की ओर इंगित करता है। 'कितनी चिडिया उडे अकास, दाना है धरती के पास' वाली कहावत के अनुसार ऐतिहासिक भूमि पर उतर आने से कल्पना के लिए जीवन के सत्य का दाना सुलभ और साकार हो जाता है; और कृषि, वाणिज्य-व्यवसाय, कला-कौशल, समाजशास्त्र, साहित्य, नीति, धर्म, दर्शन के रूप मे खंड-खंड विभक्त मनुष्य की सास्कृतिक चेतना का ज्ञान अधिक यथार्थ हो जाता है।'[२३]

कवि के व्यक्तिगत जीवन मे जिन-जिन परिस्थियो का आगमन हुआ, उन्ही से प्रभावित विचारो को काव्य का विषय बनाया। कवि ने जीवन के परिवर्तन को माना है और परिवर्तन जीवन का एक अनिवार्य अग है। युग एकरसता पसंद नही करता, वह भिन्न भिन्न रसो का स्वाद चखना चाहता है। साहित्य के साथ भी यही बात लागू होती है, तब साहित्यकार एकरसता कैसे देखना पसन्द करेगा। वास्तव मे कविता वही है जो मानवीय मनोवृत्तियो का समयानुकूल रूप खीच दे।

---

२३. आधुनिक कवि, भाग २, भूमिका पृ० ३१

अन्यथा वह प्रथम कोटि की कविता नहीं होगी। कवि पंत के काव्यमय जीवन का विकास क्रमशः हुआ, वह सर्वप्रथम सुकुमार अनुभूति का उपासक रहकर भावप्रवण बन गया। इस प्रकार उन्होंने सौंदर्य-चिंतन, दार्शनिक चिंतन, भौतिक चिंतन, एवं विवेचना की। सच तो यह है कि पंत का विकास एक क्रम से हुआ, जो एक सफल कवि का प्रधान गुण है। उसने अंत में आकर कविता को जन-जीवन के साथ लगा दिया जिसके कारण उसकी कविताएं उत्कृष्ट हुईं। आज तो सर्वव्याप्त हलचल है, इस बीच कवि की दिव्यात्मा अटल एवं दृढ़ है। कवि सामूहिक प्रगति चाहता है जिससे भावी मानव-समाज का भविष्य उज्ज्वल और आलोकमय हो। पंत ने स्वयं स्वीकार करते हुए लिखा है कि भविष्य के साहित्यिक को इस युग के वाद-विवादों, अर्थशास्त्र और राजनीति के मतांतरों द्वारा, इस सन्धिकाल की घृणा, द्वेष, कलह के वातावरण के भीतर से, अपने को वाणी नहीं देनी पड़ेगी। उसके सामने आज के तर्क-संघर्ष, ज्ञान-विज्ञान, स्वप्न-कल्पना—सब घुलमिल कर एक सजीव सामाजिकता और सांस्कृतिक चेतना के रूप में वास्तविक एवं साकार हो जायेंगे। वर्तमान युद्ध और रक्तपात के उस पार वह एक नवीन, प्रबुद्ध, विकसित और हँसती-बोलती हुई, विश्व-निर्माण में निरत, मानवता से अपनी सृजन-सामग्री ग्रहण कर सकेगा। इस परिवर्तन-काल के विक्षुब्ध लेखक की अत्यन्त सीमाएँ और अपार कठिनाइयाँ हैं।' अपने इस विचारधारा से अनुप्राणित होकर कवि ने 'ग्राम्या' में सामाजिक प्रवृत्तियों को काव्य का आकार प्रदान किया है।

संक्षेप में 'ग्राम्या' की भावधारा की विशेषताएं निम्नांकित हैं—

ग्राम्या की विशेषताएँ

(क) 'युग-वाणी' में कवि ने जो सिद्धान्त समाज-व्यवस्था एवं नई संस्कृति की स्थापना के लिए स्थिर किये थे, उसी का प्रयोग ग्राम्या में हुआ है। (ख) 'युगवाणी' में जनकल्याण के लिए मार्क्स का साम्यवाद अपनाया गया था, परन्तु 'ग्राम्या' में कवि ने उसे भारतीय रंगों में रंग दिया है।

(ग) 'ग्राम्या मे सिद्धान्त-वाक्य नही है, अगर है भी तो उनकी संख्या अल्प है। इनमे ग्रामीण जीवन का मार्मिक चित्रण हुआ है। (घ) इसमे कवि ने अपने सिद्धान्तो को व्यावहारिक बनाने का प्रयास किया है। (ङ) इसमे कवि ने सिर्फ गभीर दार्शनिक सिद्धातो के विश्लेषण विवेचना मे अपनी प्रतिभा का व्यय नही किया है, वरन् छोटी-से-छोटी समस्याओ का अकन करना कविकर्म माना है। (च) 'ग्राम्या' की रचनाएँ अत्यन्त मार्मिक एवं प्रभावशालिनी हुई हैं। 'मानव-मर्म को छूने की शक्ति इन रचनाओ मे इसलिए अधिक है कि इनमे कवि ने अत्यन्त सयत रूप से, पर कौशल के साथ, अपनी भावुकता का अभिव्यंजन किया है। भावना और सिद्धात के इस योग से प्रगतिवाद का सच्चा रूप निखर पाया है, इसमे संदेह नही।' (ज) 'ग्राम्या' की कविताओ मे व्यंग्य-गीति भी है और उनका व्यग्य-बाण शत्रु और मित्र दोनो पर पड़ता है। (झ) इसमे सेक्स की भी चर्चा आयी है जिसमे ऐन्द्रिकता के साथ-साथ वासना की भी गंध है, पर उनकी सेक्स-भावना स्वस्थ एवं मास-पूजा के 'रुग्ण विलास' से रहित है। (ट) इसकी भाषा उत्कृष्ट है, वह इस अर्थ मे उसके शब्दो मे एक शक्ति और दृढता है।

'ग्राम्या' की रचना करने के अनन्तर कवि सात वर्षों तक मौन रहा और उसकी प्रतिभा संचित रही। इसका एकमात्र तात्कालिक कारण है उनकी रुग्णता। इस बीच मे कविता को कई प्रकार के दुःखो का सामना करना पडा। एक बार फिर वह मृत्युशय्या पर जा पडा और इस स्थिति पर जा पहुँचा जहाँ से मृत्यु दृष्टिगोचर होने लगी। मृत्यु के

स्वर्ण-किरण

उस अन्ध-तमस् को भेदकर नवजीवन की स्वर्ण-किरण का उद्भास स्वभावतः जीवन दर्शन मे परिवर्तन की अपेक्षा करता है। वास्तव मे मृत्यु जीवन की भौतिकता के लिए सब से बडी ललकार है—आज से शतसहस्र वर्ष पूर्व मानव-चेतना के उस नव-प्रभात मे वैदिक ऋषि ने मानव को भौतिक

लिप्साओं से सावधान करने के लिए ही तो कहा था—'ॐ क्रतो स्मर, कृतं क्रतो स्मर'। मृत्यु की चेतना जीवन के स्थूल तथ्यों को भेद कर उसके सूक्ष्म सत्यों को अनायास ही उद्‌घाटित कर देती है। अतएव कवि को स्थूल से सूक्ष्म की ओर, वस्तु से आत्मा की ओर प्रेरित करने के लिए उसकी इस रुग्णता ने भी कम से-कम परिस्थिति का कार्य आवश्यक किया है। पंत-जैसे व्यक्ति के जीवन में वैसे ही कटुता के लिए स्थान कम था, जो कुछ कटुता थी वह इस अग्नि में जलकर निःशेष हो गई—अब उसमें प्राणों का अमृत है नवजीवन, आशा और उल्लास।'[२४] जब कवि स्वस्थ हुआ तब कुछ समय के लिए पांडेचरी के अरविंद-आश्रम में रहा जिसके फलस्वरूप उसके जीवन-संबंधी दृष्टिकोण में भी परिवर्तन हुआ। अरविंद का प्रभाव कवि पर पड़ा जिसको पंत ने स्वयं 'उत्तरा' की प्रस्तावना में स्वीकारोक्ति के रूप में लिखा है कि 'कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति भी मेरी दो रचनाएँ 'युगपथ' में प्रकाशित हो रही हैं, किन्तु इन सबमें जो एक परिपूर्ण एवं संतुलित अन्तर्दृष्टि का अभाव खटकता था, उसकी पूर्त्ति मुझे श्री अरविन्द के जीवन-दर्शन में मिली; और इस अन्तर्दृष्टि को मैं इस विश्व-संक्रान्ति-काल के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा अमूल्य समझता हूँ। मैंने अपने समकालीन लेखकों तथा विशिष्ट व्यक्तियों पर समय-समय पर स्तुति-गान लिखने में सुख अनुभव किया है। श्री अरविंद के प्रति मेरी कुछ विनम्र रचनाएँ, भेंट रूप में, 'स्वर्ण किरण,' 'स्वर्ण-धूलि' तथा 'युगपथ' में पाठकों को मिलेंगी। श्री अरविंद को मैं इस युग के अत्यन्त महान् तथा अतुलनीय विभूति मानता हूँ। उनके जीवन-दर्शन से मुझे पूर्ण संतोष प्राप्त हुआ। उनसे अधिक व्यापक, ऊर्ध्व तथा अतलस्पर्शी व्यक्तित्व, जिनके जीवन-दर्शन में आध्यात्म का सूक्ष्म, बुद्धि-अग्राह्य सत्य नवीन ऐश्वर्य तथा महिमा से मंडित हो उठा है,

---

२४. पंत का नवीन जीवन दर्शन : डा० नगेन्द्र

मुझे दूसरा कही देखने को नहीं मिला। विश्व-कल्याण के लिए मै श्री अरविंद की देन को इतिहास की सबसे बडी देन मानता हूं। उसके सामने इस युग के वैज्ञानिको की अणुशक्ति की देन भी अत्यन्त तुच्छ है। उनके दान के बिना शायद भूत-विज्ञान का वडे-से-बडा दान भी जीवन मृत जाति के भविष्य के लिए आत्म-पराजय तथा अशान्ति ही का वाहक बन जाता।'[२५] इसी पृष्ठभूमि को दृष्टिपथ मे रखते हुए हम स्वर्ण-किरण मे आये हुए भावो का विश्लेषण करेगे।

'स्वर्ण-किरण' से पंत के कवि जीवन का एक नवीन अध्याय आरम्भ पाता है, इसलिए हम इसे 'पुनरुज्जीवन का काव्य' की सज्ञा प्रदान कर सकते है। इसमे कवि की दृष्टि और स्वर परिवर्तित है। अब यह अनुभव करने लगा है कि उसे जीवन मे कोई गंभीर कार्य न्यस्त करना है, इसलिए उन्होने 'स्नेह-समर्पण' मे डा० एन० सी० जोशी से ये शब्द कहे है—

डॉक्टर साहब, मुझे आपने,
दिया पुनः नव जीवन ।
गीत गा सकूँ फिर विधि का था
उसमे गूढ़ प्रयोजन ॥

इस प्रकार यह विदित होता है कि नवजीवन की प्राप्ति के फल-स्वरूप उन्हे आन्तरिक प्रसन्नता है और साथ-साथ 'विधि' पर आस्था भी। पंत मे आश्चर्यमय आशा है जो 'स्वर्ण' का पर्याय है और वह प्रथम किरण के समान बाहर से आकर एक आह्लादकारी परिवर्तन प्रस्तुत कर देता है। फलतः व्यग्र होकर कवि 'स्वर्ण-किरण' का अभिनन्दन करते हुए गा उठता है—

हँस लो स्वर्ण-किरण,
स्वरो मे हँसी लहर,

---

२५ उत्तरा की प्रस्तावना, पृष्ठ सं० १६-२०

ज्योति का जगा प्रहर,
चेतना उठी सिहर
स्वर्ण यह दिव्य अमर

और अब वह कामना भी करता है—

युगों का तमस हरण
करें यह स्वर्ण किरण

नव-जीवन प्राप्ति से उसे जो नवोल्लास मिला उसे स्वीकार करते हुए कहता है—

जादू बिछा दिया इस भू पर
तुमने सोने की किरणों की
जीवन हरियाली बो-बो कर।

इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ एक विशेष प्रकार की आध्यात्मिक भविष्य-कल्पना है। यह आध्यात्मिक साम्प्रदायिक या धार्मिक नहीं है, प्रत्युत मनोवैज्ञानिक है जिसका सम्बन्ध सूक्ष्म चेतना से है। आत्मा की सत्ता पर कवि को विश्वास है, लेकिन वे उसे चेतना का सूक्ष्म रूप मानते हैं, 'अपने मे सर्वथा निरपेक्ष भौतिक जीवन से एकात अविकृत उसका अस्तित्व नही है। और स्पष्ट शब्दो मे मानव-हृदय का पूर्णतम विकसित रूप आत्मा है। अतएव उसमे मानव-हृदय की विभूतियो का चरम विकास मिलता है। उनसे रहित शुद्ध-बुद्ध अथवा निर्लिप्त रूप, नकारात्मक एवं निवृत्तिमूलक पंत को अग्राह्य है। उन्होने जिस आध्यात्मिक चेतना की कल्पना की है उसमे भौतिकता का परिष्कार है, तिरस्कार नहीं है, उन्नयन है, दमन नहीं है।'

'आज हमें मानव-मन को करना आत्मा के अभिमुख'

और साथ ही

वही सत्य कर सकता मानव-जीवन का परिचालन,
भूतवाद हो जिसका रज तन प्राणिवाद जिसका मन
औ' अध्यात्मवाद हो जिसका हृदय गम्भीर चिरन्तन।

सच तो यह है कि आध्यात्मिकता पंत की काव्य-चेतना का सहज विश्वास है। इसमे चेतना का अभिनन्दन है, जड़ का नही। कुछ लोग यह कहेगे कि पंत जन-जीवन के अंकन से विमुख हो रहे है, परन्तु बात ऐसी नहीं है, वरन् कवि विश्व-कल्याण की साधना मे लीन है।

'स्वर्णकिरण' की भावधारा की विशेषताएँ

संक्षेप मे 'स्वर्णकिरण' की भावधारा की विशेषताएँ निम्नांकित है—(क) 'स्वर्णकिरण' एक आध्यात्मिक भावो से पूर्ण काव्य है। इसमे भी 'गुञ्जन के समान आत्मा की साधना पर जोर डाला गया है, परन्तु इसमे उसका सम्बन्ध पीडित मानवता से है। (ख) कवि आध्यात्मिक धरातल पर समस्त मानव का उत्कर्ष देखने का अभिलाषी है और उसी मे मानव-जीवन की सार्थकता है। (ग) कवि आत्मा की शक्ति पर आस्था रखता है जिसके कारण वह नवीन सिद्धान्तो की स्थापना कर लेने की आशा करता है। (घ) इसमे प्रणय-भावना की भी अभिव्यक्ति हुई है जिसमे वास्तविक गम्भीरता है। वह पंत की आयु और मननशील प्रवृत्ति की देन है। (ङ) इसमे कवि समाज का कटु आलोचक है, पर वह सिर्फ उसकी आलोचना ही नही करता, वरन् कवि का विचार है कि मनुष्य को, समाज को सहयोगी बनाना है। (च) प्रकृतिपरक कविताओ मे चिंतन की प्रधानता है।

स्वर्णधूलि

पंत ने स्वय कहा है कि 'स्वर्णधूलि का धरातल सामाजिक है।' इसके कहने का तात्पर्य यह है कि इसमे भी पूर्ववर्ती रचनाओं के समान जन-चेतना एव लोक-मंगल-भावना को अभिव्यक्ति मिली है। इसमे सिर्फ वस्तुवाद का स्वर ही मुखरित नही है, वरन् आध्यात्मिक अनुभूति का कंठ विशेष रूप से फूटा है। इसमे कवि ने वैदिक ऋषियो की दृष्टि से ही जन-जीवन को देखा है। कवि यह नही चाहता कि मानव को सिर्फ भौतिक सुख की प्राप्ति हो, वरन् समस्त मानव के आध्यात्मिक उत्कर्ष को देखने का वह

आकाङ्क्षी है। अतएव हम देखते हैं कि 'स्वर्णकिरण' की भावना 'स्वर्णधूलि' मे गम्भीर हो गई है। इन्हीं भावनाओं के आधार पर जीवन, जगत् आदि सम्बन्धी मूल्यो (values) का निर्माण हुआ है। उनकी एक कविता 'पतिता' है जिसमे उन्होने यह बतलाया है कि उन्नत और पतित का अन्तर शरीर पर आधारित नहीं, वरन् मन पर है—

मन से होते मनुज कलंकित
रज की देह सदा से कलुषित
प्रेम पतित पावन है, तुमको
रहने दूँगा मैं न कलंकित

समाज की जो परिभाषा परम्परानुमोदित है, वह कवि को मान्य नहीं है। श्रीमद्भगवद्गीता द्वारा निर्दिष्ट निष्काम प्रेम पर ही परकीया और स्वकीया का भेद देखिये—

अतः स्वकीया या परकीया जन-समाज की है परिभाषा
काम मुक्त औ प्रीति युक्त होगी मनुष्यता, मुझको आशा !

कवि आत्मसत्य को ही वास्तविक सत्य मानता है, क्योंकि वस्तु-सत्य और भाव-सत्य दोनो 'अति' की सीमा पर है और इसलिए ये दोनो वास्तविकता से काफी दूर हो गए हैं। 'आत्मसत्य' को कवि ने वास्तविक सत्य माना है, क्योंकि वह दोनो 'वस्तुसत्य और भावसत्य' के बीच सामंजस्य उपस्थित करता है। इसके लिए 'सामंजस्य' शीर्षक कविता (पृ० सं० ६) द्रष्टव्य है। इसी सामंजस्य की महत्ता को कवि ने 'आजाद' शीर्षक कविता मे नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया है। अध्यात्मवाद को कवि ने जीवन का वास्तविक लक्ष्य माना है—

वही सत्य कर सकता मानव-जीवन का परिचालन
भूतवाद हो जिसका रजतन, प्राणिवाद जिसका मन,
औ' अध्यात्मवाद हो जिसका हृदय गंभीर चिरंतन
जिसमे मूल सृजन विकास के, विश्व प्रगति के गोपन।

कवि ने सभी स्थलो पर आध्यात्मिकता पर जोर दिया है। वे

सास्कृतिक चेतना पर विश्वास करते है। स्वय पंत ने लिखा है कि 'आधुनिक भौतिकवाद हमें, मध्ययुगीय भारतीय दार्शनिको के आत्मवाद की तरह, अपने युग के लिए एकागी तथा अधूरा लगता है। मानव-जीवन के रूप को अखण्डनीय ही मानना पडता है, उसके टुकडे नहीं किये जा सकते। सास्कृतिक संचरण न राजनीति की तरह संबल संचरण है और न धर्म तथा अध्यात्म की तरह ऊर्ध्व संचरण। वह इन दोनों का मध्यवर्ती पंथ है।'[२६]

'आर्षवाणी' और 'मानसी' शीर्षक दो खंडो मे बहुत-सी कविताएँ आयी है जिनमे उनका स्वर भिन्न है, 'अन्तर्भावना का धरातल है।' 'आर्षवाणी' के अन्तर्गत रचनाओ मे कवि ने स्वीकार किया है कि 'वह वैदिक मंत्रो तथा तत्सम्बन्धी अध्ययन से प्रभावित है।' इस खण्ड मे कवि ने प्राकृतिक उपादानो को लक्षित कर विश्व-मंगल-भावना को अभिव्यक्ति दी है, कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य है—

जौ के खेतो मे ज्यो गाये करती विचरण
देव, हमारे उर में सुख से तुम करो रमण !
सब दिशाओ से दो हमको इन्द्र चिर अभय,
विजयी हो षड् रिपुओ पर, जीवन हो सुखमय।

श्री इलाचंद जोशी ने पत की नवीन विचारधारा को सक्षेप मे इस प्रकार व्यक्त किया है—

(क) मानवीय जीवन का निर्धारण बाह्य मन के द्वारा नही, बल्कि अंतश्चेतना के आधार पर करने का युग आ गया है। हमे सचेत रूप से मानवीय अवचेतना के अगाध सागर का मंथन करना होगा और इस मंथन के फलस्वरूप जो सूक्ष्म भाव-सत्य ऊपर उठेंगे उनका विश्लेषण अनुभवी रासायनिक की तरह उनके द्वारा व्यक्ति तथा समाज

---

२६. 'सांस्कृतिक चेतना क्यों कैसे'—सु० न० पंत,
(संगम, १८ सितम्बर १९४८)

का सुसंयोजित कल्याण-पथ निर्देशित करना होगा ।

(ख) अंतश्चेतन को दो भागों मे विभक्त किया जा सकता है— अवचेतना (Unconscious) और ऊर्ध्वचेतना (Superconscious)। ये दोनों चेतनाएँ एक दूसरे से अविच्छिन्न रूप मे बंधी है। विना अवचेतना की सागरोपम गहराई की नींव का ऊर्ध्व या अतिचेतना की हिमालयोपम ऊँचाई ठहर नही सकती, और विना अतिचेतना की चरम उच्चता पर स्थित स्थिर और चिर प्रशान्त लक्ष्य के विश्वजनीन अवचेतना का असीम उद्वेलन कोई सार्थकता नही रखता ।''' (इन दोनों चेतनाओं मे सामञ्जस्य-मूलक सूत्र या समन्वयात्मक सेतु बांधना होगा) ।

(ग) मानवीय अवचेतना ही दिव्य ज्योतिमयी स्वर्गीय उषा है और वही घनघोर अंधकारमयी नारकीय रात्रि । ये दोनो एक ही तत्त्व के दो रूप है। यदि सामूहिक मानव-जीवन वास्तविक स्वर्गिकता की स्थापना करना चाहता है तो अवचेतन लोक के उसी घोर नारकीय अंधकार की यथार्थ मिट्टी के आधार पर ही उसे प्रतिष्ठित किया जा सकता है ।

(घ) ऐतिहासिक, सामाजिक अथवा व्यक्तिगत जीवन मे ईश्वर (सर्जनात्मिका प्रकृति का मूल प्रेरक तत्त्व) फिर-फिर मरता-जीता है और फिर फिर नये रूपो मे आविर्भूत होता रहता है। सामूहिक अवचेतना के अनंत और अगाध-तम सागर के भीतर निहित अमित रहस्यमयी कामना-तरगे युग-युग मे, पलपल मे अपनी बद्ध स्थिति से मुक्त होकर नव रूपो मे बाहर को फूट पड़ने के लिए आकुल रहती हैं, और वे ही नव-नव स्फुरित स्रोत एक ओर युग युग के आराध्यदेव का रूप बदलते रहते है और दूसरी ओर प्रतिफल के जीवन का नव-नव निर्माण करते चले आते है। चिर विकासशील (बाह्य और अंतर) प्रकृति युग-युग के अंधकार से तथा प्रकाश से समान रूप से शक्ति खींचती हुई द्वेष, कलह, संग्राम और अंतर्विरोध के बीच में, प्रकट

ह्रास की अवस्था में भी नया बल प्राप्त करती हुई, प्रतिपल नये-नये उन्नत तत्वों में रूपांतरित होती हुई आगे को बढ़ती चली जाती है।

(ङ) आधुनिक गणित इस सिद्धांत पर पहुंचा है कि विश्व के समस्त भौतिक तत्त्व आत्मनिपीडन अथवा आत्म-मंथन द्वारा धीरे-धीरे शक्ति-तत्त्व में परिणत होते जा रहे हैं और गणित द्वारा ही इस महासत्य का आभास मिल रहा है कि वह समस्त शक्तितत्त्व भी आत्म निपीडन द्वारा धीरे-धीरे सूक्ष्म मनस्तत्त्व में परिणत हो जायगा। इस प्रकार समस्त विश्व में अनतोगत्वा एक सूक्ष्म और व्यापक चेतना-तत्त्व के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह जायगा। पतजी की विभिन्न कविताओं में दूसरे रूपों में इसी सत्य की ओर निर्देश पाया जाता है।

उत्तरा

'स्वर्ण-किरण' और 'स्वर्ण-धूलि' के दो वर्षों के पश्चात् 'उत्तरा' का प्रकाशन हुआ। सामान्य रूप से 'उत्तरा' अपनी दो पूर्ववर्ती रचनाओं की परम्परा में है। पर 'स्वर्ण-किरण' और 'स्वर्ण धूलि' में समष्टि-चिंतन की प्रधानता है, लेकिन 'उत्तरा' में पंत का कवि मानव को, मानव-समाज को, संस्कृति को बदल डालने की आकांक्षा की अभिव्यक्ति प्रदान करता है। साथ-ही-साथ कवि को यह विश्वास हो जाता है कि उसकी आकांक्षा फलीभूत हो जायगी। इसी आस्था पर उनकी इच्छा का स्वर्ण 'भू-स्वर्ग' बन रहा है, परन्तु इसमें किसी-न-किसी रूप में 'भू' का आंचल सरक ही गया है। 'भू' कवि के पाँवों के नीचे आकर दब गया और वहाँ से उसकी अन्तः चेतना जाग्रत् हो उठी। इसके फलस्वरूप पंत की आन्तरिक प्रवृत्ति उन्मुख हो गयी और उनके चिंतन की धारा एक शीर्ष-बिन्दु पर जाकर स्थिर हो जाती है। इस प्रकार पंत कवि की अपेक्षा एक दार्शनिक बन जाता है और इसीलिए उसकी दार्शनिक चिंतना 'उत्तरा' में फूट पड़ी है।

यों तो 'उत्तरा' में कुछ प्रकृतिपरक, कुछ वियोग शृंगार-विषयक, कुछ धरती तथा युग-जीवन-संबंधी एवं कुछ प्रार्थना-विषयक कविताओं

चाहिए।' [२८] पंत के विचारों में स्पष्ट होता है कि न वह गांधीवादी हैं, न मार्क्सवादी और न अरविंदवादी, वरन् वह सभी वादों का समन्वित रूप हैं।

'उत्तरा की चेतनावृत्ति में हम दो प्रमुख प्रवृत्तियों की प्रधानता पाते हैं। एक का सम्बन्ध सामाजिक मनोवृत्ति से है और दूसरी का सम्बन्ध कवि के व्यक्तिगत विचारों से है। जहाँ तक हम सामाजिक चेतना की ओर देखते हैं तो हमें युगांत, युगवाणी अथवा स्वर्णकिरण और स्वर्णधूलि का न तो मानव-जगत मिलता है और न कवि की वैयक्तिक वृत्ति ही मिलती है।' [२९]

यह हम ऊपर लिख आये हैं कि कवि बहिर्जगत् का विस्तार और अन्तर्जीवन का विकास चाहता है, जिसकी अभिव्यक्ति पंत ने इस प्रकार की है—

बदल रहा अब स्थूल धरातल,
परिणत होता सूक्ष्म मनस्तल,
विस्तृत होता बहिर्जगत् अब
विस्तृत अंतर्जीवन अभिमत।

एक दूसरी कविता है 'निर्माण-काल', जिसमें उन्होंने इसी भावना की अभिव्यक्ति इन चरणों में की है—

यह रे भू का निर्माणकाल
हँसता नवजीवन अरुणोदय
ले रही जन्म नव मानवता
अब खर्वमनुजता होती क्षय!

इस प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति अनेक कविताओं में हुई है और वे हैं—'युगविषाद', 'युगछाया', 'युगसंघर्ष', 'जागरण-गान', 'गीत-विहग', 'उद्बोधन' आदि।

---

२८. 'उत्तरा' की प्रस्तावना, पृ०—२। २९. फूलचन्द पाण्डेय

'मानववाद' पर कवि ने मन की प्रकृत दशा का रूप अंकित किया है और साथ-साथ मानवता मे भव-विकास भी देखा है—

मानव अन्तर हो भू विस्तृत
नव मानवता में भव विकसित,
जन मन हो नव चेतना ग्रथित,
जीवन शोभा हो कुसुमित हे
फिर दिशि क्षण मे !
तुम देव, बनो चिर दया प्रेम जनजन से,
जय मंगल हित हे !

'उत्तरा' के पश्चात् 'अतिमा' प्रकाशित हुई है, इसमे भी उत्तरा की कोटि की कविताएँ हैं और उसका धरातल भी वही है।

इस प्रकार हम देखते है कि कवि का स्वाभाविक विकास हुआ है, उसका व्यक्तित्व शुरू से अन्त तक प्रगतिशील रहा है। पंत का साहित्यिक विकास जीवन-विकास के साथ-साथ है। 'वीणा' और 'ग्रन्थि' मे पंत एक अल्हड भावुक कवि था 'जो अपने व्यक्तिगत प्रेम और इसके प्रतिदान को ही सब-कुछ समझ बैठा था, जिसने प्रेयसि के रंगीन सपने देखने मे जीवन की सार्थकता मान ली थी, आगे चलकर 'पल्लव' मे कुछ गम्भीर हो गया है। वह अपना व्यक्तिगत प्रेम जो निस्सन्देह वासनामूलक या पार्थिव है और जिसके शरीर का महत्त्व मन से अधिक नही तो कम भी नही है, समस्त चराचर जगत् मे प्रचारित देखता है, अपनी वेदना की व्याप्ति वह समस्त विश्व मे देखता है और अस्तित्व को ही वेदना का पर्याय मान लेता है। जब वह इस प्रकार प्रकृति की ओर अपना दृष्टि-प्रसार करता है और फलतः क्षण-क्षण परिवर्तनशील प्राकृतिक लीलाओ को देखता है तो उसकी आँखे खुल जाती है। 'गुंजन' मे आकर उसे जीवन के यथार्थ स्वरूप की अनुभूति होती है और वह जन्म, मरण, सौंदर्य, प्रेम, प्रकृति, नारी

विकास-सूत्र और पंत

आदि के रहस्यो को बहुत-कुछ समझ पाता है; इसी हेतु गुञ्जन मे भावना का उद्दाम वेग नहीं है जैसा 'पल्लव' में है, वरन इसमें भावना और चितन मे समन्वय है। इस समन्वय का परिणाम यह होता है कि कवि मध्यम मार्ग का पक्षपाती होता है और प्रतिपल साधना द्वारा व्यक्तित्व के उत्कर्ष को जीवन की सार्थकता का आधार मानता है। व्यक्तित्व के इस उत्कर्ष के कारण उसकी दृष्टि अपने से बाहर विश्व पर पडती है और सामाजिक जीवन की करुण विपमता से वह घवडा उठता है, लेकिन उसका साधना-पुनीत मन पलायन नही करता, बल्कि समाज के रूढ़ि-जर्जर मानदण्डो को बदलने का उपक्रम करता है। 'युगात' 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' मे कवि की दृष्टि वस्तु-जगत् की विपमता दूर करने के उपाय खोजती रहती है और आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था को बदलने के लिए मानव बुद्धि रास्ता ढूंढती है, लेकिन उसे शीघ्र ही अनुभव होता है कि मानवता, आदर्श और शाति का उपभोग तब तक नहीं कर सकती जब तक अन्तस्साधना द्वारा समस्त नर-नारी अपनी आत्मा का बल पहचान न ले। 'स्वर्ण-किरण', 'स्वर्णधूलि' (और 'उत्तरा') मे, इसलिए, नवीन आध्यात्मिक मानो (Standards) और मूल्यो (Values) के संस्थापन का प्रयास है। 'गुंजन' के बाद कवि पुनः एक बार आत्मा की साधना को सर्वाधिक महत्त्व देता है। वैयक्तिक दृष्टि से जिन मानो और मूल्यो की घोपणा 'गुजन' मे हुई है, सामाजिक दृष्टि से प्रायः उन्हीं की पुनरावृत्ति 'स्वर्णधूलि' मे की गई है,।'[३०] इस प्रकार हम देखते है कि पतजी चाहे 'वाद' के जिस कटघरे मे बन्द रहे या हमलोग उन्हे बाँध दें, फिर भी वे पूर्णरूप से कवि ही है। पत की प्रगतिशीलता सर्वदा उन्मुक्त है और रहेगी। कवि चिरायु हो और हमे उनसे बहुत आशाएँ है।

---

३०. प्रो० शिवनन्दन प्रसाद

'ग्रन्थि' की कथावस्तु

कवि सुमित्रानन्दन पंत के कथनानुसार 'ग्रन्थि' की कथा यद्यपि काल्पनिक है परन्तु इसमे जो भावात्मक सच्चाई व्यक्त की गई है, उससे ऐसा प्रतीत होता है कि इसकी कथावस्तु आत्मकथा पर आधारित है। इसकी कथा इस प्रकार है :—

ग्रंथि की कथावस्तु

वसंत ऋतु की एक रम्य संध्या को, जब कि ऋतुराज के स्वागतार्थ प्रकृति शृङ्गार-विभूषित हो इठला रही थी, कवि एक सरोवर मे नौका-विहार कर रहा था। उस समय भौरो का मधुर गुजन हो रहा था, आम्रराजि मे कोकिल कू-कू कर उठती थी, पृथ्वी की कोमल कल्पनाऍ पुष्प बन कर विकसित हो रही थी। तत्कालीन वातावरण अत्यन्त उद्दीप्त था। कवि धीरे-धीरे नाव खे रहा था। सरोवर की लहरो के समान उसकी आकाक्षाऍ-अभिलाषाऍ काल्पनिक स्वर्ग को स्पर्श करने वाली ही थी कि प्रतीची मुसका उठी। उसके सुकोमल कपोल रक्तिम हो उठे। किन्तु इस सुख का दिवसावसान हो गया और सूर्य जा डूबा। इधर आनन्द-विहार की नौका भी लहरो की लपटो मे डूब गई। प्रकृति और कवि एक समतल भूमि पर आ गए। जीवन एवं प्रकृति पर तिमिर का पर्दा पड़ गया।

जल मे गिरने के कारण कवि अचेत हो गया। सयोगवश किसी एक अपरिचित बालिका ने उसकी प्राण रक्षा की। मूर्च्छा टूटने पर कवि ने अपने को एक सुन्दर बालिका की गोद मे पाया। उसका सिर बालिका की सुकोमल जॉघ पर स्थित था और बालिका उसकी ओर व्यग्र एवं चिन्तित दृष्टि से देख रही थी। (इस घटना मे सूर्यास्त से चॉद ऊगने तक का समय लग गया)। ज्योही ऑखे खुली कि—

इंदु पर, उस इंदु मुख पर, साथ ही
थे पड़े मेरे नयन, जो उदय से
लाज से रक्तिम हुए थे. पूर्व को
पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था !

सहसा आकाश हँस उठा। पूर्णिमा का चाँद निकल आया। चाँद के उदित होते ही कवि की मूर्च्छा दूर हुई। दोनों स्थानों में—जीवन और प्रकृति में—प्रकाश फैल गया। कवि ने सहसा आँखें खोलीं और उसे एक साथ दो चाँद दिखाई पड़े। एक आकाश में था तो दूसरा इस धरती पर। लेकिन कवि को आकाश के चाँद से धरती का चाँद अधिक आकर्षक मालूम पड़ा। क्षण भर के लिए दोनों की आँखें चार हुई और दो कोमल हृदय प्रणय-सूत्र में आबद्ध हो गये। कवि का यह प्रथम दर्शनजन्य प्रेम (Love at the first sight) था। बालिका की आँखें भी एक बार कवि की आँखों से मिलीं और फिर तुरत वे लज्जा के कारण झुक गई मानो बालिका ने प्रणय-संबंध को और दृढ कर दिया।

उस सहज सौन्दर्य-प्रतिमा की एक लट खुलकर उसके मुख पर आ रही थी जिससे उसके मुख का सौन्दर्य और भी द्विगुणित हो उठा। उसके मुख पर लज्जा की लालिमा दौड़ गई और मुखमण्डल रक्त-वर्ण हो गया। श्वेत सरोज अरुण हो गया। कवि ने अत्यन्त विनम्रता और शिष्टता से प्रणय की याचना की। कवि की इच्छा थी कि बालिका शब्दों द्वारा अपना प्रेम प्रकट करे लेकिन वह बिलकुल मौन थी। उसकी मूकता ने उसके हृदय के प्रेम को प्रकट कर दिया किन्तु वह (मूकता) कवि को खल रही थी। कवि ने उससे पूछा कि उसने (बालिका ने) मौन क्यों धारण कर लिया? वह इस समय जैसे अथाह सागर में डूब रहा था। बालिका ही उसका आधार थी। कवि कहता है कि डूबते को बालू का सहारा हो जाता है। घने अंधकार में ही चाँदनी निखार पाती है। दीन को ही दान देने का

महत्व होता है। कवि भी इस समय निराश्रित एवं अकिंचन हो रहा था। उसके (बालिका के) सहारे की उसे नितान्त आवश्यकता थी। कवि ने बालिका से अपने हृदय की व्यग्रता को प्रकट करते हुए अनेक प्रकार से अनुनय-विनय की पर बालिका की मौनता भंग न हो सकी। बहुत प्रयत्न के पश्चात् वह सिर्फ 'नाथ !' कह सकी और चली गई परन्तु इन दो शब्दो से ही उसने हृदय के समस्त भाव व्यक्त कर दिये।

बालिका अधिक कुछ बोल तो नही सकी लेकिन उसके हृदय मे प्रेम अंकुरित हो आया था, यह कवि से छिपा नही रहा। उसके मुख पर खेलती हुई रंगीनियाँ उसके हृदयस्थ प्रेम का परिचय दे रही थी। सेब की वाह्य लालिमा ही उसकी आन्तरिक सरसता का पता देती है। बालिका बस भावमग्न हो पृथ्वी को अपने नखो से खुरच रही थी। दोनो के हृदय एक दूसरे पर न्योछावर हो चुके थे।

प्रातःकाल का समय था। सूर्य की स्वर्णिम किरणे पुष्प की पंखुडियो पर खेल रही थी। ओस की उज्ज्वल बूदे पत्रो पर मोता की तरह चमक रही थी। कवि की प्रियतमा—बालिका—खिडकी के पास बैठ कर उपवन की शोभा को देख रही थी। उसकी आँखो मे उत्सुकता भरी थी। उपवन का प्रान्तर मधुपो की गुजार से मुखरित हो रहा था। उसी समय एक भौरा मालिन के पानी की बौछार से आहत होकर एक पेड की जड के समीप गिरा। वह फिर उडने का प्रयत्न कर रहा था। एक बिल्ली दौड-धूप कर क्रीडा कर रही थी। उसी समय सखियाँ आयी और आपस मे हास-परिहास करने लगी। बालिका अपने प्रियतम के ध्यान मे मग्न थी। उसे इस नूतन स्थिति मे देख सखियाँ उस पर व्यग्य कसने लगी। वे कहने लगी कि पहले वह एक कलिका थी लेकिन अब विकसित हो परागमय पुष्प बन गयी है। उसकी मदमत्त चितवन प्रेमी के हृदय भ्रमर को विद्धकर विकल कर देने लगी है। बालिका उन परिहासो से विकल हो अपनी मनोदशा को छिपाने का प्रयास करने लगी—

सहम सखियों के निठुर आक्षेप से
सुभ्रुवों के साथ मन को खींचती
वह मृगी सी चकित आँखों को फिरा
थी छिपाना चाहती अपनी दशा।

और वह इस प्रयास में कुछ हद तक सफल भी हुई। उसने सखियों को दूसरी-दूसरी बातों में फँसा लिया।

बालिका कवि से विलग हो जाने के बाद विरह की अग्नि में जलने लगी। उसकी सखियाँ जब उसके पास आकर में रसभरी प्रेम-कहानियाँ कहती तो उसका हृदय और भी व्याकुल हो उठता था। उन प्रेम-चर्चाओं में वह भी भाग लेती थी।

इस तरह प्रतिबिम्ब सखियों में हुई
प्रेम चर्चा सुन मधुर मुसकान में
भाग लेती, वह सरलता की कला
हर रही थी कुमुद की प्रिय कुटिलता।

कवि का बाल्य-जीवन बड़ा दुर्भाग्य पूर्ण रहा। शैशवावस्था में ही उसे माता के प्यार से वंचित होना पड़ा। शायद इसी की पूर्ति के लिए भाग्य ने उसे प्रेमिका के पास तक पहुँचाया। कभी कभी दुर्घटना भी बड़ी लाभदायक सिद्ध होती है। उसमें दुर्घटना-ग्रस्त व्यक्ति का कुछ उपकार ही छिपा रहता है। कवि के साथ भी यही बात हुई। उसकी नाव जलमग्न क्या हुई उसके रिक्त हृदय को प्रेमिका का प्यार मिला। लेकिन वह प्रेम चिरस्थायी नहीं बन सका। कवि अपनी प्रेयसी को जीवन-संगिनी बनाना चाहता था लेकिन दुर्भाग्य ने ऐसा नहीं होने दिया। उस बालिका का परिणय-संस्कार दूसरे व्यक्ति के साथ सम्पन्न हो गया। इससे उसका हृदय मर्माहत हो उठा—

हाय! मेरे सामने ही प्रणय का
ग्रंथि बंधन हो गया, वह नव कमल

मधुप सा मेरा हृदय लेकर, किसी
अन्य मानस का विभूषण हो गया !

बालिका का दूसरे के साथ विवाह हो जाने से कवि के हृदय को बड़ा आघात पहुँचा। वह अपना हृदय उसे दान कर चुका था। उसका अन्तर विरह-व्यथा से क्रन्दन कर उठा। वह मानो सर्वस्व खोकर कंगाले बन गया—

पर, हृदय ! सब भाँति तू कंगाल है,
उठ, किसी निर्जन विपिन मे बैठ कर
अश्रुओ की बाढ़ में अपनी बिकी
भग्न भावी को डुबादे आँख-सी।

कवि का भग्न हृदय रोता है लेकिन साथ ही वह यह सोचकर अपने को सात्वना देता है कि विरह-वेदना मे तड़पना तो संसार का नियम ही है। चकोर चाँद के लिए रोता है, चातक एक बून्द स्वाति-जल के लिए तड़पता रहता है। अतः उसका हृदय भी यदि विरह की आग मे जलता है तो ठीक ही है। भावी होकर ही रहता है। मनुष्य सदा उसके क्रूर हाथो मे क्रीडा-कन्दुक बन जाता है। और सौन्दर्य तो सदा हेय है। उसके क्रूर जाल मे फँस कर मनुष्य क्या मुसीबते नही उठाता ? कवि सौन्दर्य की मृग-मरीचिका मे पड़ कर अपना सर्वस्व खो बैठा। उसे सौन्दर्य से घृणा हो गयी इसीलिए वह उसे सम्बोधित कर कहता है—

छिः सरल सौन्दर्य ! तुम सचमुच बड़े
निठुर औ' नादान हो ! सुकुमार, यो
पलक दल में, तारकों मे, अधर मे
खेल कर तुम कर रहे हो हाय ! क्या ?

प्रेम से भी कवि को निराशा ही मिली। उसे यह विश्वास हो गया कि प्रेम मात्र दुःख का कारण है। इसीलिए वह कहता है—

और सोले प्रेम ! क्या तुम हो बने
वेदना के विकल हाथों में ? जहाँ
झूमते गज-से विचरते हो, वहीं
आह है, उन्माद है, उत्ताप है।

प्रेम-वंचित हो जाने से कवि का जीवन वेदनामय हो गया। विरह की आग में जलते रहने के सिवा और उसके पास कुछ शेष नहीं रहा। वह स्वयं कंगाल हो गया और संसार उसे वेदना का आगार प्रतीत होने लगा। उसके अन्तर की सारी आशाएँ-अभिलाषाएँ नष्ट हो गयीं। उसका सारा सुख-स्वप्न मिट्टी में मिल गया। फिर भी कवि संतोष प्रकट करता है। वह कहता है कि 'वेदना के इस मनोहर विपिन में' भी वह सुख-सपन्न है। उसके जीवन में दुःख का अभाव नहीं है बल्कि उसका जीवन ही दुःखों का भंडार है। अन्त में कवि पाठकों से यह कहते हुए विदा लेता है—

कुटिल भावी के अँधेरे कूप में
और कितने हैं अभी आँसू छिपे,—
छलकती आँखें उन्हें प्रिय ! फिर कभी
भेंट देंगी कर कमल में आपके।

'ग्रन्थि' की कथावस्तु के पढने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह एक भावात्मक प्रणय-गल्प है। इसका रचनाकाल जनवरी सन् १९२० है। यह प्रेम पर रचित पंत का सर्व-प्रथम काव्य है। मेरा तो अपना मत है कि शायद आधुनिक युग का यह सब से पहला प्रणय काव्य है और इसीके बाद प० राम नरेश त्रिपाठी ने 'मिलन', 'स्वप्न' और 'पथिक' की रचना की। 'ग्रन्थि' एक प्रेम कहानी के साथ साथ विरह काव्य भी है। एक छोटी-सी दुर्घटना का आधार लेकर कवि विप्रलंभ-शृंगार में 'ग्रन्थि' की रचना करता है और इसमें कवि के विरह-विदग्ध हृदय के उद्गार प्रस्फुटित हुए हैं। इस काव्य-कृति में कवि निराशावादी बन

कथावस्तु की समीक्षा

गया है पर 'वीणा' मे वह आशावादी था। यो तो स्वयं पंत ने 'ग्रन्थि' की कथा को काल्पनिक बतलाया है, फिर भी इसमे जो भावात्मक सच्चाई है, उसके कारण इसकी काव्यवस्तु आत्मकथा जैसी प्रतीत होती है। इसके अनेक स्थलो पर कवि की आत्मानुभूत उक्तियाँ दृष्टिगत होती है जो अत्यन्त कटु है। इसकी कथावस्तु की पृष्ठभूमि तैयार करने मे सिर्फ कल्पना का ही सयोग है, पर वास्तविक घटना की तरह है।

यह एक वर्णन-प्रधान काव्य है पर इसमे घटना नाम मात्र के लिए है। पहले कवि नाव डूबने की घटना को सक्षेप मे बतला देता है और फिर वह शीघ्र ही मुख्य कथा पर आ जाता है जिससे पाठको को व्यर्थ उत्सुक नहीं होना पडता। इसकी मुख्य कथा की आरभिक पंक्तियाँ अत्यन्त मार्मिक है—

जब विमूर्छित नीद से मै था जगा
शीश रख मेरा सुकोमल जाँघ पर

.. .

छलकती थी बाढ़-सी सौन्दर्य की,
अधखिले सस्मित गढ़ो से सीप के।

—यहाँ तक बालिका के रूप-सौन्दर्य एवं कवि की उत्सुकता का वर्णन है। बाद मे कवि की उत्कंठा का वर्णन हुआ है जो अत्यन्त ही मार्मिक है। यह सत्य है कि कथा का अन्त दुखान्त है पर उसमे अस्पष्टता अधिक है। मामूली-सी घटना के आधार पर कवि ने भावुकता का रंगमहल खडा करने का प्रयास किया है, यही कारण है कि इसमे भावो का आघात-प्रतिघात काफी मिलता है। इसमे प्रेमी और प्रेमिका के बीच कथनोपकथन भी नही है जिससे दोनो का चारित्रिक विकास हो। बालिका कवि की सारी बातो का उत्तर एक शब्द से ही देती है। इसमे बालिका की प्रगल्भा सखियाँ प्रेम पर लम्बा-चौडा व्याख्यान भी देती है पर वह एकाध शब्द से अधिक नही बोलती है।

इसमें जो भी सखियाँ आयी हैं, वे बालिका के चरित्र को प्रस्फुटित करने के लिए ही। यों तो उन सखियों का कोई भी महत्व नहीं है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इसमें कथावस्तु का कोई महत्व नहीं है, यदि है तो प्रकृति-वर्णन, सौन्दर्य-वर्णन एवं भाव-वर्णन का। इसीलिए प० शान्तिप्रिय द्विवेदी ने ठीक ही लिखा है कि 'ग्रन्थि की प्रणय-कथा कवि की सुकुमारता के अनुकूल ही है, वह लोल लहरों पर कलापति से लिखी हुई है। इसकी विशेषता कहानी की शैली में है, घटना की अपेक्षा इसमें नाटकीय संकेतों की सूक्ष्मता में है।'



ग्रन्थि और उसके पात्र

'वीणा' के पश्चात् 'ग्रन्थि' का प्रकाशन हुआ। कवि ने स्वयं 'विज्ञापन' मे लिखा है कि यह सन् १९२० के जनवरी मास मे लिखी गई थी। कुछ लोगो की राय मे 'ग्रन्थि पंतजी के अपने अनुभव पर आधृत है, उसमे उन्होने अपनी प्रणय कहानी लिखी है।' इसमे सच्चाई है या नहीं, कुछ कहा नही जा सकता।

'ग्रन्थि' एक प्रणय-गल्प है। यह प्रेम पर रचित पंत का प्रथम काव्य है और इसकी कथावस्तु अत्यन्त छोटी है। इसमे दो पात्र हैं—एक स्वयं पंत याने कवि और एक अज्ञातनामा बालिका। कवि पंत

'ग्रन्थि' : एक प्रणय - गल्प

प्रकृति का प्रेमी है, जैसाकि उसके जीवन चरित्र एवं काव्य से विदित होता है। एक दिन की घटना है। वसंत का महीना था। संध्या हो रही थी। कवि एक सरोवर मे नौका-विहार को निकला। वह नाव खेने की कला मे निपुण नही था। वह नाव खेता जा रहा था कि अचानक उसकी नाव सूर्यास्त के साथ ही डूब गई। कवि के जीवन और प्रकृति मे अंधकार समा गया। कवि सरोवर मे डूब गया पर एक अनजान बालिका ने उसके प्राण को अंत होने से बचा लिया। कैसे बचाया, क्यो बचाया, इसकी चर्चा इस काव्य-पुस्तक मे नही हो पायी है। इस संबंध मे यह सकेत करना अनिवार्य हो जाता है कि अब तक हमलोगो ने जितनी भी कहानिया पढ़ी है और आए दिन पढ़ने को मिलती है, उनसे यही पता चलता है कि आम तौर से युवक ही युवतियो की प्राण-रक्षा करता आया है। पर पंत की 'ग्रन्थि' ही एक ऐसी कथा है जिससे यह ज्ञात होता है कि एक युवती ही एक युवक (पंत) की प्राण-रक्षा करती है। वस्तुतः इस दृष्टि से 'ग्रन्थि' की कथा अलौकिक है।

कवि सौन्दर्य का अनन्य भक्त है। स्वय कवि ने और आलोचकों ने इस बात को स्वीकार किया। पंत बचपन से ही सौन्दर्य का नायक रहा है। चेतन होने पर उसने अपने सिर को एक सुन्दरी की गोद मे पाया और ज्योंही उसकी दृष्टि उठी त्योंही बालिका के सौन्दर्य पर केन्द्रित हो गई। यह सौन्दर्य-भावना अत्यन्त सूक्ष्म है। इतना ही नहीं बल्कि उसमें कृतज्ञता की भी भावना पूर्ण रूप से समाहित है। एक ओर कवि के हृदय मे कृतज्ञता का भाव है और दूसरी ओर उसकी दृष्टि मे उस अज्ञातनामा बालिका के प्रति आकर्षण है। कृतज्ञता और आकर्षण के कारण कवि की वाणी मे एक तरह का अलौकिक मिठास भर गया है। कवि की आंख बालिका की आख से जा टकराती है। आँखो के चार होते ही कवि उसकी ओर आकृष्ट हो जाता है। वह अपने आकर्षण को स्पष्ट शब्दो मे व्यक्त कर देता है। प्रथम परिचय मे ही कवि मुखर हो उठा है—

प्रणय-भाव का उद्भव

'सलिल शोभे ! जो पतित आहत भ्रमर
सदय हो तुमने लगाया हृदय मे,
एक तरल तरंग से उसको बचा
दूसरी में क्यों डुबाती हो पुनः ?' (पृ० ११)

लेकिन कवि की इस मुखरता मे शालीनता सदैव विद्यमान है। पंत जन्म से कवि है। इसीलिए उसकी मामूली-सी बात-चीत भी भावों मे स्नात है और 'कल्पना के बोझ से बोझिल है।' धीरे-धीरे उसका स्नेह-बंधन दृढ़ से दृढतर होता गया और वह उसके लिए व्यथित रहने लगा। इस प्रथम प्रणय-व्यापार मे कवि को सफलता नही मिली। उसकी आँखो के सामने ही उस अज्ञातनामा बालिका का ग्रन्थि-बंधन किसी अन्य व्यक्ति के साथ हो गया। इस प्रकार कवि की समस्त आकांक्षाएँ एवं कल्पनाएँ मटियामेट हो गई। इस घटना से कवि की आशा-लता मुरझा जाती है। इतना ही नहीं, कवि ने ग्रन्थि-बंधन

को रात रो-रो कर बिता दी थी। और अन्त में कवि का आहत मन वियोग सहन के लिए बाध्य हो जाता है।

'ग्रन्थि' की कथा से यह स्पष्ट है कि इसमे दो मुख्य पात्र है—कवि और बालिका। कवि सौन्दर्य का प्रेमी है। अतः उसमे कोमलता का होना अनिवार्य है। 'कोमलता' कवि की चारित्र्यगत एवं भावगत विशेषता बन गई है। चेतन होने पर कवि तो उसकी ओर आकृष्ट

पुरुष-पात्र के दोष-गुण

हुआ ही था, वह अज्ञात बालिका भी कोमल-तनय पंत की ओर आकृष्ट थी। यही आकर्षण क्रमशः प्रेम में परिवर्तित हो गया। कवि के प्रणय-भाव मे एक संकोच है। वह उसे प्राप्त करने के लिए किसी प्रकार का यत्न नही करता है जब कि बालिका भी उससे प्रेम करती है, यह हमे खटकता है। शायद कवि समाज से भयभीत था, वह अपनी बदनामी से डरता था। दूसरी ओर यह भी सभव है कि उस बालिका के परिवार वाले भी इस प्रणय-संबध से पूर्णतया अनभिज्ञ होगे। यदि परिवार वालो को इसका कुछ भी आभास मिल जाता तो कथा की धारा परिवर्तित हो जाती, पर ऐसा नही हो पाया है। पूरी कथा पढ़ जाने पर भी हमे कोई ऐसा सूत्र नही मिलता है। कोमलता एक गुण है पर इसकी भी एक सीमा है। पुरुष मे सीमाहीन कोमलता एक दोष है जो हम 'ग्रन्थि' के कवि मे पाते है। उसमें परुषता नाम मात्र के लिए भी नहीं है। इस दृष्टि से कवि का दोष हमारी आँखो के सामने नाच उठता है। हम उसे 'कापुरुष' की संज्ञा दे बैठते हैं।

प्रेम अंधा होता है, उसके सामने भला बुरा कुछ नही सूझता। बालिका का मन कवि मे उलझ गया था। वह कवि को प्यार करने लगी थी। पर उसका विवाह दूसरे व्यक्ति से कर दिया गया। अतः यह निश्चित है कि यह विवाह उसके मन के अनुकूल न रहा होगा क्योकि बालिका भी इस प्रेम रस मे पूर्ण रूप से निमग्न हो चुकी थी। इस स्थल पर कवि का एक दुर्बल पक्ष हमारे सामने उपस्थित होता है।

वह यह कि जिस बालिका ने अपने प्राण पर खेल कर डूबते हुए कवि के जीवन की रक्षा की थी, वह कवि 'उसके सामाजिक जड बंधन के समय उसकी मुक्ति मे सहायक न होकर निर्जन में बैठा रोता रहा, इस विवशता पर वह कितनी रोई होगी; पर जो कहानी के प्रारम्भ में ही सरोवर मे नौका डुबा बैठा, वह आगे चलकर प्रेम की नौका को खेकर न ले जा सके तो अधिक आश्चर्य न होना चाहिए।' वस्तुतः उसकी अकर्मण्यता अवाञ्छनीय है।

'ग्रन्थि' के मुख्य पात्रो मे बालिका भी है पर वह अज्ञातनामा है। कहीं भी कवि ने उसका नाम नहीं दिया है और न देने की चेष्टा की है। शायद वह बालिका कवि के पडोस की रहनेवाली होगी! खैर, उस बालिका के नाम नही रहने से कोई हानि-लाभ नहीं है। बालिका का प्रथम दर्शन उस समय होता है जब वह संज्ञाहीन कवि को सरोवर से निकाल कर अपनी सुकोमल जाँघ पर उसका सिर रक्खे उसकी चेतना को वापस ले आने के लिए व्यग्र है। वह एक दृष्टि से कवि के म्लान मुख को निहार रही थी। वह उसे 'सदय, भीरु, अधीर, चिंतित दृष्टि से' देख रही थी। उस दृश्य को देखकर हमे ऐसा प्रतीत होता है कि वह बालिका 'साहस, सेवा एवं करुणा' की साक्षात् देवी है! उसके इस रूप को देखकर हम उसकी ओर आकृष्ट हो जाते हैं, उसकी एक सजीव प्रतिमा हमारी आँखो के सामने खड़ी हो जाती है। इसके बावजूद, वह अत्यन्त सुन्दर है। वह इतनी सुन्दर है कि उस पूर्णिमा का चाँद भी उसके अनुपम रूप को देखकर लजा गया है।

बालिका की चारित्र्यगत विशेषताएँ

इन्दु पर, उस इन्दु मुख पर, साथ ही
थे पड़े मेरे नयन, जो उदय से,
लाज से रक्तिम हुए थे;—पूर्व को
पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था!

बाल रजनी-सी अलक थी डोलती
भ्रमित हो शशि के बदन के बीच में;
अचल रेखांकित कभी थी कर रही
प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य में। (पृ० ९)

—तात्पर्य यह है कि इसमे बालिका का सौन्दर्य और कवि की समुत्सुकता साकार हो उठी है।

इसके अतिरिक्त, बालिका स्वभाव से शान्त है। वह कम बोलती है। एक ओर कवि बोलने वाला है तो दूसरी ओर बालिका मौन धारण करनेवाली है। वस्तुतः यह जो स्वभावगत वैषम्य है वह कवि और बालिका के स्वभाव का नही; प्रत्युत् 'पुरुष और प्रकृति के, स्त्री और पुरुष के स्वभाव का' भेद है। कवि स्वयं बोलता चला जाता है पर बालिका प्रत्युत्तर मे सिर्फ एक शब्द ही कहती है। एक शब्द मे उत्तर देना उसकी गंभीरता का बोधक है। उसमे नाममात्र के लिए भी चचलता नही है। कथा की धारा के साथ जब हम आगे बढ़ते है तो देखते है कि जिस स्थल पर प्रगल्भा सखियाँ प्रेम-संबंधी अनुभव सुनाती हैं और प्रेम के ऊपर लम्बी चौड़ी बाते कहती है वहाँ वह थोडे-से शब्दो मे अपनी बात कहती है। इसकी चर्चा के सिलसिले मे वह बोलने के बजाय 'अधिकतर मधुर मुस्कान से ही काम लेती है।'

जब उस बालिका का 'ग्रन्थि-बंधन' अन्य व्यक्ति के साथ हो जाता है तो उसकी सजल प्रतिमा सर्वदा के लिए हमारी आँखो से दूर हो जाती है। इस सिलसिले मे हमारे मन मे एक प्रश्न उठता है—क्यो कवि ने उसे कम बोलने का मौका दिया? क्यो कवि ने उसके हृदय की वेदना को दबा दिया? शायद यह हो सकता है कि कवि को स्त्री-सुलभ स्वभाव की खूबी-खराबी नही मालूम हो। उस समय कवि युवा था इसलिए इन सब परिस्थितियो से अपरिचित रहा हो। अपरिचित होने के कारण ही उसने इन बातो पर विशेष रूप से प्रकाश नही डाला है।

ऊपर हम यह संकेत कर चुके हैं कि इस काव्य में दो मुख्य पात्र हैं पर इसके अलावे भी कुछ पात्रों की सृष्टि हुई है। कवि सुमित्रा-नंदन पंत ने इस काव्य के मंच पर उस अज्ञातनामा बालिका की कई सखियों को प्रस्तुत किया है। वे सखियाँ 'हास्य-विनोद-व्यंग्य-स्नेहमयी हैं।' उनका कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं है। वे सिर्फ नायिका की चारित्र्यगत रेखाओं को पुष्ट करने के लिए ही आयी हैं। इस दृष्टि से उन सखियों का कोई महत्व नहीं है। इसके अतिरिक्त, इस काव्यात्मक गल्प में बालिका के संग विचरण करनेवाली 'उसकी एक प्रिय बिल्ली है जिसने अपनी उपस्थिति से वाता-वरण को यथार्थता प्रदान की है।' इस विवेचन-विश्लेषण के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि इसमें बालिका का चरित्र कवि की अपेक्षा सुन्दर ही उतरा है, पर कवि ने नारी के व्यक्तित्व को अच्छी तरह उभार नहीं पाया है जो उसकी सबसे बड़ी कमजोरी है। इसका मुख्य कारण है नारी-मनोविज्ञान की अनभिज्ञता।

उपसंहार



क्या 'ग्रन्थि' वर्णनात्मक काव्य है ?

'ग्रन्थि' कवि सुमित्रानंदन पंत का एक कथात्मक काव्य है। इसमे एक घटना का उल्लेख है जो वर्णन-प्रधान है। इस काव्य-ग्रन्थ मे प्रकृति, सौन्दर्य एवं भाव का वर्णन है तथा इन तीनों का वर्णन कलात्मक ढंग से हो पाया है। इसे प्रकृति, सौदर्य और भाव का दर्पण कह सकते हैं। इस काव्य की पृष्ठभूमि मे प्रकृति खड़ी है। वसंत का मौसम है। संध्या समय है। आरम्भ मे कवि ने वसंत की सन्ध्या को अपनी तूलिका से चित्रित किया है जो अत्यन्त ही मनोरम है। उसीके पश्चात् कवि सरोवर मे डूब जाता है। प्रकृति सम्बन्धी पक्तियाँ देखिये —

प्रकृति-वर्णन

वह मधुर मधुमास था, जब गंध से
मुग्ध होकर झूमते थे मधुप दल;
रसिक पिक से सरस तरुण रसाल थे
अवनि के सुख बढ़ रहे थे दिवस से।
जान कर ऋतुराज का नव आगमन
अखिल कोमल कामनाएँ अवनि की
खिल उठी थीं मृदुल सुमनों में कई
सफल होने को अवनि के ईश से।
रुचिरतर निज कनक किरणों को तपन
चरम गिरि को खींचता था कृपण सा,
अरुण आभा में रंगा था वह तपन
रज कणों सी वासनाओं से विपुल। ···आदि (पृ० ६-७)

लेकिन कवि के सुख का अन्त सूर्यास्त के साथ ही हो जाता है और आनन्द-विहार की नाव सरोवर मे निमग्न हो जाती है। कवि संज्ञाहीन हो जाता है। जब चेतना लौट आती है तो वह स्वयं को

एक सुन्दर बालिका की गोद में पाता है। उसकी दृष्टि बालिका के चन्द्र-मुख जैसी सुन्दरता पर जाकर अटक जाती है, उसके मुख-सौंदर्य को उसके केशों की एक लट द्विगुणित कर रही है और जब दोनों की आँखें चार हो जाती हैं तो बालिका के कपोलों पर लाज की लालिमा दौड़ पड़ती है। कवि पंत अपनी इस सौन्दर्यानुभूति को शब्दों में रखने का प्रयत्न करता है। यहाँ पर यह संकेत कर देना अनिवार्य है कि काव्य का आरम्भ प्राकृतिक-सौन्दर्य से होता है क्योंकि उसे काव्य-प्रेरणा उसीसे प्राप्त हुई है। लेकिन ज्योंही कथा-प्रवाह के साथ हम बहते हैं वैसे ही वह सौन्दर्य-वर्णन में लग जाता है। इस सौन्दर्य वर्णन को हम मानसिक-सौन्दर्य-वर्णन की संज्ञा भी दे सकते हैं। जब तक कवि नायिका के प्रणय के आदान-प्रदान से अपरिचित रहा तब तक वह प्राकृतिक सौन्दर्य-अंकन में ही तल्लीन रहा। परन्तु 'ग्रन्थि' की नायिका से साक्षात्कार होने के पश्चात् उसके नयनों में नारी की सौन्दर्यानुभूति नाचने लगी। अब कवि की सौन्दर्यानुभूति की कुछेक पंक्तियाँ देखिये—

सौन्दर्य-वर्णन

इन्दु पर, उस इन्दु मुख पर, साथ ही
थे पड़े मेरे नयन, जो उदय से,
लाज से रक्तिम हुए थे,—पूर्व को
पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था!
बाल रजनी-सी अलक थी डोलती
भ्रमित हो शशि के बदन के बीच में;
अचल, रेखांकित कभी थी कर रही
प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य में। (पृ० ९)
लाज की मादक सुरा-सी लालिमा
फैल गालों में नवीन गुलाब से,
छलकती थी बाढ़-सी सौन्दर्य की
अधखुले सस्मित-गढ़ों से, सीप-से। (पृ० १०)

इस स्थल पर यह बतला देना आवश्यक है कि पंत और प्रसाद की सौन्दर्य-भावना मे अन्तर है, पर दोनो उसे (सौन्दर्य को) चेतना का वरदान मानते है। कवि 'पंत को सौन्दर्य-भावना भावनात्मक होकर भी उस अर्थ मे अतीन्द्रिय नही जिस अर्थ मे प्रसाद की। प्रसादजी सौन्दर्य को यौन-भावना या युग्म भावना (sex) के ऊपर मानते है किन्तु पत की सौन्दर्य-चेतना यौन-सत्ता के धरातल से बिलकुल अलग नही हो पाती। कवि पंत की उपचेतना मे सौन्दर्य-संस्कार नारी आकार ग्रहण करते है।'

प्रसाद और पंत में अन्तर

बालिका ने कवि के जीवन की रक्षा तो की, पर उसके बाद बालिका के हृदय मे अनेक भावनाओ का उदय हुआ। जब तक कवि अचेत था, उसकी चेतना नही लौटी थी तब तक वह अधीर थी। चेतना आने के पश्चात् कवि का प्रणय-निवेदन हुआ जिसके फलस्वरूप उसके कपोलो पर लज्जा की रक्तिम धारा प्रवाहित हो चली। बाद मे वह वातायन के पास बैठ कर उद्यान को देखती है, उसके साथ प्रगल्भा सखियाँ छेड़छाड़ करती है पर वह कुछ न कह कर मुस्कुरा कर रह जाती है। जब उस बालिका का विवाह किसी अन्य व्यक्ति से हो जाता है तो कवि का जीवन वेदना से भर जाता है और हताश हृदय की पीड़ा अन्दर ही अन्दर घुलती जाती है। कवि पत ने इन सब भावनाओ को अत्यन्त सुन्दर रूप से अंकित किया है। चेतना लौट आने के उपरान्त कवि बालिका की ओर आकृष्ट होता है, उसके हृदय मे उसे पाने की लालसा जगती है, वह अपने हृदय को नायिका के समक्ष खोल कर रख देता है (पृ० ११ की पंक्तियाँ) तब नायिका 'एक शब्द' से अपनी समस्त भावनाओं को वाणी देती है—

भाव-वर्णन

निज पलक, मेरी विकलता, साथ ही
अवनि से, उर से मृगेक्षिणी ने उठा,

एक पल, निज स्नेह श्यामल दृष्टि से
स्निग्ध कर दी दृष्टि मेरी दीप-सी !
'नाथ !' कह अतिशय मधुरता से द्रवे
सरल स्वर में, सुमुखि थी सकुचा गई; (पृ० १३)

यह अत्यन्त स्वाभाविक है कि जब कोई व्यक्ति अपने समाज में अपने साथी-संगी के साथ होता है तो वहाँ पर अपने हृदय की गाँठों को खोल कर रख देता है क्योंकि उसमे कोई दूसरा व्यक्ति नहीं होता है। उस वातावरण मे जो भी बाते कही जाती है वे बिलकुल सच्ची होती है, उनमे बनाव-शृङ्गार नहीं होता है। बालिका का भी अपना समाज है। उसे सखियाँ घेरे है। आपस मे सभी मनोविनोद कर रही हैं। इस काव्य मे एक सखी अपने हृदय की भावनाओं को उँडेल कर रख देती है—

स्वप्न के सस्मित अधर पर, नीद मे,
एक बार किसी अपरिचित साँस का
अर्ध चुंबन छोड़ मै सहसा चौंक कर
जग पड़ी हूँ अनिल पीड़ित लहर सी !
हूँ विलोक चुकी उजेले भाग्य मे
सखि ! अचानक तारको से टूटते,
करुण कोमल भेद भी हूँ पढ़ चुकी
मूक उर के, अश्रु अपलक नयन के। (पृ० २५)

एक ओर कवि और बालिका का प्रेम अकुर फूट जाता है। बालिका के कोमल हृदय मे इसका पौधा तैयार हो चुका है पर असमय ही परिवार-रूपी माली आकर उसकी स्नेह-सिंचित डाली को काट कर अन्य व्यक्ति के हाथ मे सौंप देता है। यह देख कवि का हृदय हाहाकार कर उठता है जो अत्यन्त ही करुण है। कवि का हृदय टूक-टूक हो जाता है। वह विरह मे निदग्ध हो कर करुण चीत्कार कर उठता है—

शैवलिनि ! जाओ, मिलो तुम सिंधु से,
अनिल ! आलिंगन करो तुम गगन को
चन्द्रिके ! चूमो तरंगो के अधर,
उडुगणों ! गाओ, पवन वीणा बजा !
पर, हृदय ! सब भाँति तू कगाल है,
उठ, किसी निर्जन विपिन मे।बैठ कर
अश्रुओ की वाढ़ मे अपनी बिकी
भग्न भावों को डुबा दे आँख - सी ! (पृ० २५)

इस प्रकार हम देखते है कि कवि पंत ने प्रकृति, सौन्दर्य और भाव का अत्यन्त मार्मिक वर्णन किया है। प्रकृति, सौन्दर्य और भाव ऊपरी दृष्टि से अलग-अलग मालूम पडते है पर मूल मे एक ही है। इन तीनो मे सौन्दर्य की अनुभूति छिपी है। अतएव इनके वर्णन का अर्थ ही है सौन्दर्यानुभूति। इनके नाम क्रमशः इस प्रकार दिये जा सकते है—प्राकृतिक सौन्दर्य, रूप-सौन्दर्य (मानसिक-सौन्दर्य) और भाव सौन्दर्य। 'ग्रन्थि' मे इनका अत्यन्त विशद् चित्र अंकित है। वस्तुतः पत की सौन्दर्यानुभूति न सिर्फ सक्रिय है, वरन् विशद् भी और यही सौन्दर्य उनकी कविता की आत्मा है। इस प्रकार के वर्णन के कारण ही हम 'ग्रन्थि' को एक वर्णन-प्रधान कथात्मक काव्य कह सकते है।

पत जी सुन्दर के कवि है और उनका मन सौन्दर्य-जीवी है। उनमे सौन्दर्य की बुभुक्षा-सी है। उनके काव्य मे असुन्दर को कोई स्थान नही है। पंत का सौन्दर्य रीतिकालीन सस्कृति के पोपित सौन्दर्य से बिलकुल भिन्न है। रीतिकाल का सौन्दर्य संकीर्ण है पर छायावादी पत का सौन्दर्य व्यापक है। रीतिकालीन सौन्दर्य जड है पर छायावादी सौन्दर्य चेतन। छायावादी पत ने रीतिकालीन सौन्दर्य भावना का पुनर्मूल्याकन किया है। उनको सौन्दर्यानुभूति मे कुरूपता को कोई स्थान नही मिला है। कवि ने

उपसंहार

अपनी सौन्दर्य-क्षुधा की शान्ति के लिए एक ओर 'उन्मन मधुवन' की ओर दृष्टिपात किया है तो दूसरी ओर 'निखिल छवि की छवि' नारी की ओर। उनकी कविता में सर्वत्र सौन्दर्य की आत्मा का दर्शन होता है। पंत के सौन्दर्य में कीट्स की-सी मादकता है। जोशीजी को लिखे गये पत्र से यह विदित होता है कि सौन्दर्यान्वेषण के लिए पंतजी कम्यूनिज्म की ओर आकृष्ट हुए थे और तत्पश्चात् वे 'कुत्सित स्वरूप' में सौन्दर्य का दर्शन करने लगे थे, लेकिन आधुनिक पंत आत्मिक सौन्दर्य से सम्मोहित हैं। अतएव हम कह सकते हैं कि पंत की सौन्दर्य-भावना स्थिर नहीं है प्रत्युत् गतिशील है, उसमें निरन्तर विकास हो रहा है।



'ग्रन्थि' और पंत की नारी-भावना

She gave me eyes, she gave me ears,
And humble cares, and delicate fears;
A heart, the fountain of sweet tears;
And love, and thought, and joy.

—Wordsworth.

नारी की परिभाषा है सौंदर्य और सौंदर्य की साकार प्रतिमा है नारी। समस्त भूमंडल नारी-सौंदर्य से आह्लादित एवं प्रभावित है। कवियों पर नारी का प्रभाव विशेषतया प्रेम के द्वारा ही पड़ता है। प्रेम अजेय है, अनुपम है, उत्कृष्टतम है। यही प्रेम हमारी आत्मा का संबंध उस असीम से कराने लगता है जो सृष्टि के आरंभ से ही कल्पनाओं का केन्द्र रहा है। हमारे भारतीय साहित्य में भी नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है, जिनके सौंदर्य, सेवाधर्म, पातिव्रत तथा त्याग की कथाओं से इतिहास भरा पड़ा है। आरंभ से ही नारी कवियों का काव्य-विषय बनती आयी है तो भला छायावादी कवियों से वह कैसे तिरस्कृत हो पाती।

नारी

नर और नारी के बीच एक आकर्षण की कड़ी है। अगर यह आकर्षण स्थायी रूप से रह गया तो वह प्रेम में परिणत हो गया। इस आकर्षण के पीछे सेक्स की भावना अन्तर्निहित है। 'जिसकी ओर हम आकर्षित होते हैं, वह किसी-न-किसी रूप में हमारी सेक्स-भावना को गुदगुदाता है! वह भावना बड़ी जटिल भावना है। इतना होने पर भी सभी प्रेमियों में यह भावना प्रबल नहीं होती। बहुत-से व्यक्ति हैं जो शरीर के सुख के लिए इतने लालायित नहीं होते जितने

नर-नारी के आकर्षण की समस्या

इस बात के इच्छुक होते है कि किसी के मन को वे प्रभावित कर सकें और कहीं कोई ऐसा हो जो उनके मन को समझ सके। इसके आगे आकर्षण कहीं-कहीं बौद्धिकता पर चलता है। किसी-किसी की प्रतिभा से हम चकित रहते है और जीवन भर बंधे रहते हैं। न ऐसे व्यक्तियों के शरीर की ओर हमारा ध्यान रहता है और न अपने लिए उनकी भावुकता से तात्पर्य। प्रेम की कोई कोई घटना इससे भी सूक्ष्म होती है। कभी-कभी ऐसा होता है कि जीवन मे दो प्राणी मिलकर सदैव को एक-दूसरे से बिछुड जाते है। वहाँ शरीर से भी संबंध नहीं रहता, बौद्धिकता से प्रभावित होने की बात भी नहीं उठती और नहीं उठती है उनके मन को प्रभावित करने की बात। फिर भी दो प्राणी दूर बैठे एक-दूसरे के लिए चुपचाप अनुभव करते रहते हैं। ऐसी दशा मे केवल आत्मा आत्मा को पहचानती है। प्रेम के लिए एक प्रवृत्ति ही पर्याप्त होती है, पर पूर्ण और उच्चकोटि का प्रेम वह है जहाँ दो प्राणियों में शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा चारों की अनुकूलता हो।'[1]

पंत का कवि नारी-सौंदर्य के प्रति आकृष्ट है, पर प्रणय-सम्बन्धी कविताओं की प्रेरक शक्ति कोई अज्ञात, अनाम और अरूप नारी है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि सिडनी (Sidney) ने स्टीला (Stella) के हँसमुख मुखमडल मे सौंदर्य तथा प्रेम का रूप पाया जो साहित्य के लिए अमर है। जेफेरिज (Jefferies) ने अपनी पुस्तक डेवी मार्न (Dewy Morn) मे फिलाइस (Felise) का बहुत दिव्य रूप अंकित किया है। उसने तो यहाँ तक कहा है 'कि ऐसी सुशीला नारी शैशव से ही बन्दिनी बना दी जाय जिससे उसको उसी पुरुष का दर्शन प्राप्त न हो, तो भी वह अनन्तकाल तक प्रेम करती रहेगी। संसार के लिए

पंत की नारी अनाम और अज्ञात

१. विश्वम्भर 'मानव'

नहीं—प्रेम के लिए; इस लोक के लिए नहीं, उस लोक के लिए; आत्मा के लिए नही, परमात्मा के लिए।' पी० बी० शैली (P. B. Shelley) ने भी 'ऑन लव' (On Love) मे इसी बात की पुष्टि की है। वर्ड्स्वर्थ की कविताओ मे नारी-भावना व्याप्त है, पर वे कल्पना-प्रस्तुत चित्र है। पर उसकी कल्पनामयी का रूप अत्यन्त ही सुन्दर, मनमोहक एवं सौन्दर्यमय है। शेक्सपियर ने भी अपनी प्रेमिका के पवित्र सौन्दर्य का रूप खडा किया है, यथा—

And truly not the morning sun of heaven
Rather becomes the grey cheeks of the east
Nor that full star that ushers on the eve
Doth halt that glory to the sober west
As these two monrning eyes become thy face.

इसी प्रकार शेक्सपियर ने एक दूसरे स्थल पर नारी-सौन्दर्य को फूलो के सौन्दर्य मे समन्वित किया है—

'But sweeter than the lids of Juno's eyes
Or cry the reate's breath.

नारी : प्रणय की प्रतिमा

वस्तुतः नारी मानव की चिर आकाक्षा तथा आकर्षण और प्रणय की प्रतिमूर्ति है। नारी का प्रणय युग-युगो से मानव के लिए एक मृगतृष्णा बनी रही है। यही कारण है कि नारी का स्थान बहुत ऊँचा है और यह युग युग का सत्य है। हमारे भारतीय शास्त्रो मे भी नारी-महत्त्व की ओर निर्देश किया गया है—

यस्य माता गृहे नास्ति भार्या चाप्रियवादिनी
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम्।

यही कारण है कि हमारे हिन्दी के कवि भी नारी के प्रति संवेदनशील है। नारी-सौन्दर्य की ओर हमारा पत का कवि भी आकृष्ट हुआ है, पर वह एक दर्शक के रूप मे खडा है। पंत ने नारी को

प्रकृति की आड में देखा है; क्योंकि वह प्रत्यक्ष होकर नारी को देखना नहीं चाहता चूँकि वह जन-भीरु है और दुनिया की आँखों से भयभीत भी। वह नारी-सौन्दर्य-अंकन-कला में निपुण है, पर वह भी प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से। पंत उसका शरीरी वर्णन नहीं करते हैं, प्रत्युत प्रकृति पर नारी-रूप का आरोप कर देते हैं। कवि नारी का चिन्तन करते-करते एक अलौकिक जगत् में प्रवेश कर जाता है जहाँ नारी आध्यात्मिकता के रंग में सराबोर हो जाती है।

'ग्रन्थि' में पंत की नारी

'ग्रन्थि' में सर्वप्रथम पंत ने एक किशोरी का सौन्दर्य देखा जहाँ जाकर उनकी आँखें कुछ क्षणों तक विस्मय-विमुग्ध बन्द हो गई थीं। पंत ने 'नायिका के चन्द्रमुख की सुन्दरता, उसके मुख पर सहसा एक लट के स्थिर हो जाने की रम्यता और दृष्टि-मिलाप से दौड़ी लाज की लालिमा को निम्नांकित पंक्तियों में व्यक्त किया है—

इन्दु पर, उस इन्दु-मुख पर; साथ ही थे पड़े मेरे नयन, जो उदय-से
लाज से रक्तिम हुए थे,—पूर्व को पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था!
बाल-रजनी-सी अलक थी डोलती भ्रमित हो शशि के बदन के बीच में;
अचल, रेखांकित कभी थी कर रही प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य में!
लाज की मादक-सुरा-सी लालिमा फैल गालों में, नवीन गुलाब-से.
छलकती थी बाढ़-सी सौन्दर्य की अधखुले सस्मित-गढ़ों से, सीप-से!

प्रकृति प्रधान, नारी गौण

इसमें प्रणय व्यापार की कथा गुम्फित है, पर हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि पंत नारी-सौन्दर्य के प्रति आकृष्ट नहीं रहे; क्योंकि उनका मन प्रकृति के कोमल रूपों में जाकर अटका हुआ था। उन्होंने 'मोह' शीर्षक कविता में यह स्पष्ट किया है कि वह प्राकृतिक सौन्दर्य का प्रेमी है, न कि नारी-सौन्दर्य का। पर कवि ने इस भावना को द्वन्द्व के रूप में व्यक्त किया है।

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले, तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन?

तज कर तरल तरंगों को इन्द्रधनुष के रंगों को
तेरे भ्रूभंगों से कैसे बिंधवा दूँ निज मृग-सा मन ?...
ऊषा-सस्मित किसलय दल, सुधा-रश्मि से उतरा जल,
ना, अधरामृत ही के मद में कैसे बहवा दूँ जीवन ?

पर आगे चल कर कवि ने नारी के रूपो को काव्य मे यथासंभव स्थान दिया, क्योकि कवि सौन्दर्योपासक रहा है। सौन्दर्योपासक होने के नाते उसने नारी मे सौन्दर्य को प्रतिष्ठित पाया और काव्य-विषय का साधन बनाया। पंत के नारी-सौन्दर्य मे मासलता का अभाव और भावोल्लास का आधिक्य है। 'उच्छ्वास' शीर्षक कविता की बालिका सुन्दर थी, सरल थी। सुन्दरता और अबोधता का मिला-जुला वर्णन पंत ने यों किया है—

सरलपन ही था उसका मन निरालापन था आभूषण
कान से मिले अजान नयन सहज था सजा सजीला तन
छिपी-सी पी-सी मृदु मुसकान छिपी-सी खिंची सखी-सी साथ,
उषा की उपमा-सी बन, मान गिरा का धरती थी, धर हाथ।

पंत के लिए नारी योग्य वस्तु नहीं है, वरन् भावनाओ की प्रेरिका है। कवि को नारी के रोम-रोम से प्यार है और उसे कवि का मलार भी मिला है। उसे सिर्फ 'घने लहराते रेशम के बाल' पर अनुराग नहीं है, प्रत्युत् कवि के लिए तो—

तुम्हारे गुण हैं मेरे गान मृदुल दुर्बलता ध्यान
तुम्हारी पावनता अभिमान, शक्ति पूजन सम्मान
अकेली सुन्दरता कल्याण सकल ऐश्वर्यों की संधान।
तुम्हारी सेवा में अनजान; हृदय मेरा है अन्तर्धान।
देवी माँ, सहचरी प्राण।

कवि नारी के वाह्य एवं आन्तरिक दोनो सौन्दर्य के प्रति जागरूक है। उसकी दृष्टि रीतिकालीन कवियो के समान एकागी नही है। यदि वह एक ओर परम्परानुमोदित पथ पर अग्रसर होता है तो दूसरी ओर

कवि अपनी पावन प्रेयसी के पवित्र स्पर्श में अलौकिक मधुरिमा और पावनता का आभास पाता है—

तुम्हारे छूने में था प्राण, संग में पावन गंगा-स्नान।
तुम्हारी वाणी में कल्याण, त्रिवेणी की लहरों में गान।

यह सत्य है कि 'ग्रन्थि' एक वेदना-प्रधान काव्य है और उनमें बालिका (जो नायिका है) के रूप का वर्णन किया गया है, पर कवि का रूप-वर्णन रीतिकालीन नहीं है प्रत्युत् वह भावात्मक है। कवि ने नारी को अपने काव्य में स्थान इसलिए दिया कि उस समय तक कवि प्रकृति-सौन्दर्य और नारी-सौन्दर्य के ताने-बानों में उलझा था। फिर भी कवि पंत में नारी की भावना अत्यन्त ही संयत हो पायी है, वह मुखरित नहीं हो पायी। इसमें नारी-सौन्दर्य उद्दाम नहीं है। प्रकृति ही अपना विशाल पट लेकर खड़ी हो गयी है। 'ग्रन्थि' में जो नारी की प्रतिमा खड़ी की गई थी वह 'पल्लव' की 'उच्छ्वास' और 'आँसू' शीर्षक कविता में भी उपस्थित हो गई। वस्तुतः इन दोनों कविताओं में जो नारी का रूप-वर्णन है, वह 'ग्रन्थि' का विकास ही माना जा सकता है। कवि के जीवन के निकट नहीं रहने के कारण हम यह निश्चित नहीं कर पाते कि 'ग्रन्थि' की नारी कल्पना लोक की है या पार्थिव जगत् की। अतः हमें यही स्वीकार करना पड़ता है कि वह मानसिक लोक की सृष्टि है।

'गुंजन' तक पंत की नारी-भावना में कल्पना है और इसके माध्यम से जिन भावों को अभिव्यक्ति मिली है, वह हृदयगत नहीं है; क्योंकि इनका भावजगत् उतना ही भावमय (Abstract) है, जितना कि शेली का। जिस प्रकार शेली हमारे सामने एक चित्र प्रस्तुत अवश्य करता है परन्तु उसका चित्र अस्पष्ट, अदृश्य एवं धूमिल है उसी प्रकार पंत ने कल्पनामयी नारी का रूप अंकित किया है जिसके उपमान इतने सूक्ष्म हैं कि समझना दुर्वार है; यद्यपि उसके उपदेश स्थूल भी है। हमारा

संक्षेप में पंत की नारी-भावना

जन-समाज प्रकृति के जीवन से दूर है। इनकी कविता कल्पना के वायुयान पर बैठ कर आकाश-गंगा की चक्कर लगाती है। इनके चित्र सुन्दर, मनोरम तथा मनोरंजक अवश्य है, पर न ये चित्र समस्त भूमण्डल पर है, न उनके हृदय मे, न कही और ही जगह है। यो तो 'गुंजन' मे आकर कवि का दृष्टिकोण कुछ-कुछ मार्क्सवादी बन गया है, पर उनका हृदय उसके साथ नहीं है। बाद की रचनाओ मे पत का दृष्टिकोण समाजवादी हो गया है जिसके कुछ ऐसे चित्र उपस्थित किये गए है जो अमर एव शाश्वत हैं। नारी के प्रति कवि का निजी विचार ही अधिकतर व्यक्त हुआ है जो कुछ सीमा तक ठीक भी है। कवि की नारी-भावना एक सीमित परिधि मे नर्तन कर रही है, वह व्यापक न होकर व्यक्तिगत है। खैर, जो भी हो, कल्पनाजनित नारी-प्रकृति की भावना का अंकन सुन्दर हुआ है।



'ग्रन्थि' में पंत का प्रणय-भाव

पंत स्वभाव से सौन्दर्य के गायक है और 'सौन्दर्य प्रेम का उत्पादक है। किन्तु सौन्दर्य-दर्शन मे जिस प्रकार विकास एवं संकोच होगा, उसी प्रकार प्रेम की भिन्न-भिन्न कोटियाँ होंगी। आधुनिक छायावाद के

सौन्दर्य और प्रेम

काव्य मे नवयुवक कवियो की चंचल तूलिका प्रेम के जो चित्र अंकित कर रही है, वे वास्तविक प्रेम के नहीं; किन्तु उद्दाम शारीरिक वासना के अशांत नग्न चित्र है। उनका अपना नया आदर्श है--अतृप्त कवि का जीवन-संगीत है। कोई प्रेम करके शान्ति चाहे तो, मनुष्य-जीवन, प्रेम और शान्ति ये तीनों साथ नहीं रह सकतीं।' किन्तु यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो यह प्रेम नहीं, वासना का प्रचण्ड ताण्डव है, मोह का पंकिल क्षेत्र है। प्रेम जीवन की मूल प्रेरक-शक्ति है। प्राणी की कोई प्रेरणा उसके प्रभाव मे जीवित नहीं रह सकती। जैसा कि ऊपर वर्णित हो चुका, सौन्दर्य की भावना पर ही प्रेम का आधार है। अतः 'सौन्दर्य की भावना कलुषित हो जाने पर प्रेम की भावना भी कलुषित हो गई है।'

प्रकृति और नारी कला

पंत का सौन्दर्य एक रेखा के दो बिन्दु पर स्थिर है। एक बिन्दु है प्रकृति और दूसरा है नारी। पर दोनो एक ही सूत्र मे गुम्फित है। उन्होंने प्रकृति को सजीव सत्ता रखनेवाली नारी के रूप मे देखा है और 'निसर्ग से तादात्म्य अनुभव करते समय स्वयं अपने को भी नारी के रूप मे चित्रित किया है। उन्होंने 'कोमल मनुज कलेवर' की कल्पना की है और 'अविराम प्रेम की बाँहों' में मुक्ति पाई है। कहा जा सकता है कि पंतजी की कला नारी-कला (Feminine Art) है।' पंतजी ने प्रकृति के दर्पण मे नारी का प्रतिबिम्ब देखा है जो सौन्दर्य की साकार प्रतिमा

है और उससे कवि के हृदय मे प्रेम के भाव जाग उठे हैं। पंत ने स्वयं लिखा भी है—

नवल मेरे जीवन की डाल बन गई प्रेमविहग का वास।

पंत माँ के आँचल के स्नेह से वंचित रहे तो किशोर कवि के हृदय मे प्रकृति जाकर बैठ गई; क्योकि उसके प्रति कवि का प्रेम शैशव के पहले प्रभात में ही उद्भूत हो चुका था। इस बात की पुष्टि के लिए पंत की 'वीणा' पर्याप्त है। उसमे प्रकृति के प्रति प्रेम है, नारी के प्रति नहीं। इसीलिए 'वीणा' की रचनाओं मे प्राकृतिक प्रेम मुखर है और नारी-प्रेम लुप्त। साथ-साथ यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना अप्रासंगिक नही कि पंत की दृष्टि नारी की ओर गई थी अवश्य, पर प्रकृति और नारी का सौन्दर्य कवि के समक्ष एक विषम समस्या बन गया था; जैसे—

वीणा

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया तोड़ प्रकृति से भी माया;
बाले! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन?
तज कर तरल तरंगो को इन्द्रधनुष के रंगो को
तेरे भ्रू-भंगों से कैसे विंधवा दूँ निज मृग-सा मन?

—लेकिन इसका यह अर्थ नही है कि कवि नारी को तिरस्कृत दृष्टि से देखता है या उसमे उसके प्रति घृणा का भाव अन्तर्निहित है। पंत वीणा-काल मे एक अल्हड़ किशोर था, तो भला उस समय वह कैसे नारी-सौन्दर्य से विमुख हो पाता। सच तो यह हे कि कवि नारी-सौन्दर्य की आकर्षण-शक्ति से भय खाता है; क्योकि उसे इस बात का भय है कि कही नारी के भ्रू-भंगो मे उलझ कर वह प्रकृति को न त्याग दे!

ग्रन्थि में प्रणय-भावना

फिर भी यह हमे स्वीकार करना ही पडेगा कि पंत मे नारी के प्रति आकर्षण था, क्योकि आज ही प्रकृति-निरीक्षण के अवसर पर नारी शृंगार कर आयी थी। नारी-शृंगार ने उसके मन को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया।

'वीणा' मे कवि नारी के प्रति सिर्फ आकृष्ट रहा, प्रेम का अनुभव न कर सका। आकर्षण-भाव से अनुराग के भाव जाग पड़े जो 'प्रेम' की संज्ञा से आक्रान्त है। यह प्रेमभाव कुछ ही वर्षों के उपरान्त उनकी 'ग्रन्थि' के रूप मे प्रकाशित हुआ। कुछ आलोचकों की दृष्टि मे 'ग्रन्थि' की प्रेम-घटना वास्तविक है, पर कवि ने 'ग्रन्थि' की कथा को एकदम काल्पनिक बतलाया है। उस समय कवि उन्नीस-बीस वर्ष का था। प्रेम की कोई बात ठीक से समझता भी नहीं था। इस लघु आकार मे मंडित प्रेम काव्य मे एक विफल-प्रणय तरुण हृदय की बड़ी ही मार्मिक वेदना है। इसकी कथावस्तु से यह मालूम होता है कि जब कवि की मूर्च्छा दूर हो जाती है तब उसकी दृष्टि नायिका के अपरिमित सौन्दर्य पर जाकर केन्द्रित हो जाती है और क्रमशः वह उसकी ओर आकृष्ट होने लगता है। 'इस प्रेम मे अपने बचाने वाले के प्रति कृतज्ञता की भावना नायक के मन मे है, और बचपन से ही वह प्यार से वंचित रहा है: अतः हृदय ने अपने अभाव की पूर्ति चाही तो वह आकांक्षा एकदम स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक है; पर है यह ऐसे ही प्रेम का उदाहरण जो देखते ही उत्पन्न होता है। कवि ने दृष्टि मिलते ही नायिका के प्रणय का परिचय भी दिया है। उसे भी कवि ने प्रारंभ से स्नेह-वंचित रखा है। अत-एक-सी मानसिक परिस्थितियो के दो व्यक्तियों को स्थिति ने यदि टकरा दिया तो ठीक ही किया। यह दुःख की बात है कि इस टकराहट से दोनो हृदय आगे चलकर चकनाचूर हो गए। प्रणय-भावना मे पल्लवित होनेवाले नायिका के हृदय की चर्चा कवि ने जिस प्रकार सखियो के प्रसंग मे की है उसी प्रकार यौवन की छाया मे प्रणय की ओर बढ़ने वाले अपने हृदय की भावनाओ के विकास का परिचय उसने अपनी दशा के वर्णन मे दिया है। इन दोनो मे अपनी दशा का वर्णन उसने स्पष्ट रूप से किया है; पर नायिका के हृदय की गति का विश्लेषण अधिक व्यंजनात्मक और काव्यमयी भाषा मे। प्रणय की चर्चा के उद्दीपनकारी वातावरण मे वहाँ प्रणय-भावना दृढ़ता पकड़ती

चली है।' [१] कवि की प्रणय-भावना 'ग्रन्थि' मे स्वानुभूत होकर सघन हो गई है। पंतजी द्वारा इसे काल्पनिक बताये जाने पर भी हम विश्वास के साथ कह सकते है कि इसमे वर्णित व्याख्याएँ काल्पनिक नहीं हो सकती, वे यथार्थ एवं पूर्ण अनुभव पर आधारित है। वस्तुतः इसमे एक प्रवंचित प्रेमी के घायल हृदय की आर्त्त-पुकार है—

कौन दोषी है? यही तो न्याय है!
वह मधुप बिंध कर तड़पता है, इधर
दग्ध चातक तरसता है,—विश्व का
नियम है यह; रो अभागे हृदय! रो

कवि ने प्रेमी की जो व्याख्याएँ प्रस्तुत की है उनमे स्वानुभूति की मार्मिक झंकार है—

यह अनोखी रीति है क्या प्रेम की
जो अपांगों से अधिक है देखता
दूर होकर और बढ़ता है, तथा
वारि पाकर पूछता है घर सदा?
प्रेम का ही नाम जप जिसने नहीं
रात्रि से पल हों गिने, प्रति शब्द से
चौंक-कर, उत्सुक नयन जिसने उधर
हो न देखा,—प्यार उसने क्या किया?

पर नहीं, तुम चपल हो, अज्ञान हो,
हृदय है, मस्तिष्क रखते ही नहीं;
बस बिना सोचे-हृदय को छीन कर
सौंप देते हो अपरिचित हाथ में!
कौन दोषी है! यही तो न्याय है....
.... अभागे हृदय रो!!

---

१ विश्वम्भर 'मानव'

शून्य जीवन के अकेले पृष्ठ पर
विरह !— अहह, कराहते इस शब्द को
किस कुलिश की तीक्ष्ण, चुभती नोक से
निठुर विधि ने अश्रुओं से है लिखा !!

'ग्रन्थि' के प्रणय-गीत की लडी 'पल्लव' में भी है, क्योंकि यह स्पष्ट है कि कवि के हृदय पर गहरा आघात पहुँचा है। 'पल्लव' में 'उच्छ्वास' और 'आँसू' काफी लम्बी कविताएँ हैं। 'ग्रन्थि' की आकस्मिक असफल प्रेम की प्रतिक्रिया उच्छ्वास बनकर आयी है और फिर आँसू की धारा प्रवाहित हो चली है। यह हो सकता है कि 'ग्रन्थि' का कथानक कुछ भिन्न हो और 'उच्छ्वास' और 'आँसू' के कथानक कुछ अलग। परन्तु साहित्यिक विकास में जहाँ कवि के आघातों का चितन और स्पष्ट रूप प्रतिपादित हुआ है, वहाँ यह अवश्य कहा जा सकता है कि किसी दूसरी घटना के समय कवि को पुनः ग्रन्थि की कथा-वस्तु याद आ जाती है और उसके 'उच्छ्वास' और 'आँसू' क्रमशः उसके अन्तर को पीडित तथा शात करने के उपचार में लग जाते हैं। 'मानव' ने इसे स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि 'आँसू' तथा 'उच्छ्वास' की नायिका ग्रन्थि की बालिका से भिन्न है और इसे पुष्ट करने के लिए 'मानव' ने उन उत्तरों का उल्लेख किया है जो उनके प्रश्नों पर पंतजी ने दिये थे। 'ग्रन्थि' के विषय मे पूछने पर उनका हँस देना या मौन-सा हो जाना, बहुत-कुछ स्वीकारात्मक प्रतीत होता है। मनोविज्ञान इसे सही मानता है, त्रुटिपूर्ण नहीं।' २

संक्षेप में पंत का 'प्रेम निष्काम प्रेम है। इसका उद्देश्य आनन्द के आदान-प्रदान के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। वह प्रेम का प्रतिदान आवश्यक नहीं मानता। अतः प्रेम उसकी दृष्टि में आत्म-

---

२ फूलचन्द पाण्डेय

निवेदन या आत्म-समर्पण का रूप ले लेता है। वह इसलिए सम्भव है कि इस प्रेम का सम्बन्ध शरीर से नहीं, आत्मा से है।' कवि द्वारा रचित ज्योत्स्ना नाटक मे एक नारी पात्र ने कहा है कि 'मै चाहती हूँ कि प्रेम की भाषा अधिक संस्कृत, प्रेम प्रकट करने के हाव-भाव और भी नवीन एवं परिमार्जित हो।' वास्तव मे यह उक्ति पंत की प्रणय-भावना के साथ चरितार्थ होती है।

उपसंहार



विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा।
रसतामेति रत्यादिः स्थायी भावः सचेतसाम्॥

अर्थात् 'सहृदयों के हृदय में वासना या चित्तवृत्ति या मनोविकार के स्वरूप से वर्तमान रति आदि स्थायी भाव ही विभाव, अनुभव और संचारी भावों के द्वारा व्यक्त होकर रस बन जाते हैं।' भरत मुनि ने रस-सिद्धांत को सूत्ररूप में लिखते हुए कहा है—'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः' अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी के संयोग से रस निष्पत्ति होती है। लोक-व्यवहार में स्थायी भावों के जो कार्य और सहकारी होते हैं, वे ही नाटक और काव्य में क्रमशः विभाव, अनुभाव और सहकारी कहलाते हैं।[४] इन्हीं तीनों की सहायता से जो स्थायी भाव होता है वही 'रस' कहलाता है।

भरत मुनि ने अपने पूर्वाचार्य द्रुहिण के प्रमाण पर आठ ही रसों का उल्लेख किया है—

शृंगार-हास्य-करुण - रौद्र - वीर - भयानकाः।
वीभत्साद्भुत-संज्ञो चेत्यष्टौ नाट्ये रसः स्मृताः॥

उनके अनुसार रसों की संख्या आठ है—शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और अद्भुत। इसके अतिरिक्त, उन्होंने इन रसों के स्थायी भावों की तालिका भी उपस्थित की है—शृंगार (रति), हास्य (हास), करुण (शोक), रौद्र (क्रोध), वीर (उत्साह), भयानक (भय), वीभत्स (घृणा) और अद्भुत (विस्मय)। भरत के उत्तरवर्ती आचार्यों ने रसों की संख्या में एक रस की और वृद्धि की है। वह है शान्त रस। शान्त रस की अवतारणा सर्वप्रथम उद्भट ने ही

---

४. कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्य-काव्ययोः॥
विभावा अनुभावाश्च कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः॥

की।[५] इस प्रकार नौ रस माने गए, परन्तु नवे शम के विषय मे दशरूप मे 'शममिति केचित्याहुः पुष्टिर्नाट्येषु नैतस्य' लिखा हुआ है; किन्तु यह कथन तथ्यरहित है। अतएव नौ रसो के साथ-साथ नौ स्थायी भाव हुए। वस्तुतः स्थायी भाव से ही रस की पहचान होती है। साहित्य-दर्पणकार ने स्थायी भाव (Primary Emotion) इस प्रकार गिनाये है—

रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चेत्थमष्टौ प्रोक्ताः शमोऽपि च॥

इन स्थायी भावों की व्याख्या साहित्य-दर्पणकार के अनुसार इस प्रकार है—मन की अनुकूल वस्तु अर्थात् प्रीति के विषय को—नायक अथवा नायिका के मन की स्वाभाविक प्रवृत्ति को रति कहते है। वाणी, वेश, भूषणादि की विपरीतता से जो चित्त का विकास होता है वह हास कहलाता है। इष्ट-नाशादि के कारण चित्त के वैक्लव्य अर्थात् व्याकुलता को शोक कहते है। विरोध, शत्रु आदि के विषय मे तीक्ष्णता के ज्ञान को क्रोध कहते है। (हम इसको किसी प्रकार नष्ट कर सके, ऐसी दुर्भावना को तीक्ष्णता कहते है।) युद्ध एवं अन्य सत्कार्यादि के आरम्भ में दृढ़ता तथा उत्कट आवेश को उत्साह कहते है अर्थात् किसी भी दुर्घट कार्य के समारम्भ मे ऐसा विचार करना कि हम इसको अवश्य करेंगे, चाहे जीवित रहे या मर जायँ, ऐसा दृढ़ निश्चय उत्साह कहलाता है। किसी रौद्र भयंकर वस्तु की शक्ति से उत्पन्न, चित्त की व्याकुलता देनेवाला भाव भय कहलाता है। किसी वस्तु मे दोष देखने पर जो घृणा उत्पन्न होती है उसे जुगुप्सा कहते है। लोक की सीमा को उल्लंघन करने वाले अलौकिक शक्ति से युक्त किसी वस्तु के दर्शनादि से उत्पन्न चित्त के विस्तार को विस्मय कहते है। किसी वस्तु के लिए इच्छा न होने को निस्पृहा कहते है। ऐसी निस्पृहता की

[५] वीभत्साद्भुतशान्ताश्च नव नाट्ये रसा स्मृताः। का० स०

अवस्था में अपनी आत्मा के आश्रय लेने का जो सुख होता है, उसको शम कहते हैं।' यह तो हुई स्थायी भाव की व्याख्या। इन नौ रसो के सिवा प्रेय[६], वात्सल्य[७], कौल्य, कार्पण्य और भक्ति[८] को भी कुछ आचार्यों ने रस माना है। इसी के आधार पर हम पत के रस-सिद्धात-सम्बन्धी दृष्टिकोण पर विचार करेंगे।

छायावादी कविताओं में रस

अनेक विद्वानो का कथन है कि छायावादी कवि काव्यशास्त्र के नियमो को मान्य नही ठहराते है। इसलिए उनकी कविताओ मे शास्त्रीय दृष्टि से रस की निष्पत्ति पूर्णरूपेण नही हो पाती है। फलतः छायावादी कविताओ से काव्यानन्द की प्राप्ति नही होती। आधुनिक काव्य-विवेचक छायावादी कविता को फूहड़ वस्तु समझकर उससे नाक-भौं सिकोड लिया करते है। तब यह देखना है कि क्या सचमुच छायावादी कविताओ मे रस के अभाव के कारण प्रभाव-प्रेषणीयता का अभाव रहता है? क्या रस की दृष्टि से छायावादी कविताएँ असफल प्रमाणित होगी? इन्ही प्रश्नों को दृष्टिपथ मे रखते हुए हमे पत की कविताओ का मूल्याकन करना है। शास्त्रीय दृष्टि से रस के प्रकार ऊपर बताये जा चुके है और सबका परिपाक छायावादी गीतो मे होना आवश्यक नहीं है; क्योकि उसका क्षेत्र सकुचित है। सच तो यह है कि प्रबन्ध-काव्य के अन्तर्गत ही इन सब रसो का समावेश हो सकता है, क्योकि उसमे मानव-जीवन की समस्त परिस्थितियो का सन्निवेश रहता है। छायावाद के मुक्तक-गीतो के अन्तर्गत मानव-जीवन के कुछ खण्ड-भाव रहते है जिसके फलस्वरूप उसमे सभी रसो की निष्पत्ति नही पायी जाती।

---

६. प्रेयः प्रियतराख्यानम् (काव्यादर्श)

७. स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः (साहित्यदर्पण)

८. निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः (भागवत)

छायावादी कविताओं में आत्मनिष्ठ भावनाओं को प्रधानता मिली है जिसके हेतु रसों की विविधता नहीं पायी जाती है। इसलिए यदि इस प्रकार की कविताओं में रस का वैचित्र्य न रहे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

पंत की कविताओं में प्रायः चार रस पाये जाते हैं—शृंगार, अद्भुत, करुण और शान्त, और शेष रसों के लिए इनकी कविता में स्थान नहीं है। पर 'ग्रन्थि' में सिर्फ विप्रलंभ-शृंगार का वर्णन है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने वात्सल्य-रस की सृष्टि की है जो पंत की कविताओं में नहीं मिलता है, क्योंकि छायावादी कविता में लौकिक, पारिवारिक संबंधों को प्रायः स्थान नहीं मिलता। भक्ति-रस का समावेश इसलिए नहीं होता कि छायावाद के कवि का आराध्य आलम्बन सगुण ईश्वर नहीं होता। वह तो किसी व्यापक अनन्त सत्ता की अनुभूति अपने मन में करता है। यदि परोक्ष सत्ता के प्रति श्रद्धा का भाव भी भक्ति-रस में अन्तर्हित कर लिया जाय तो पंत की कविताओं में भक्ति-रस के चंद छींटे नजर आयेंगे। यथा—

पंत की रस-योजना

चरण कमल में अर्पित कर मन
रज-रंजित कर तन
मधु रस-मज्जित कर मम जीवन,
चरणामृत आशय में
नीरव तार हृदय में—

छायावादी पंत की रस-योजना परिपूर्ण और प्रौढ़ है, एवं उसकी लेखनी से जिन रसों को कविता में स्थान मिला है, वह प्रशंसनीय है। कवि में सौंदर्य के प्रति प्रेम है, उसका 'मन सर्वदा प्रेयसी के सौंदर्य का कल्पनात्मक या मानसिक रस-पान कर लेने में समर्थ है।' रस की निष्पत्ति के लिए स्थायी-भाव, विभाव, अनुभाव एवं संचारीभाव नामक चार तत्त्वों की आवश्यकता है, जिनकी सम्यक् योजना पंत की कविताओं में ही पायी है।

शृंगार-रस के परिपाक मे पंत की प्रतिभा अप्रतिम है। उन्होने इसके दोनो पक्षो (संयोग और वियोग) को अपनी रचनाओ मे स्थान दिया है। शृंगार-रस का स्थायी भाव है रति (प्रेम) और रति का सफल अंकन पंत की कलागत विशेषताओ मे एक है। 'ग्रन्थि' एक छोटा-सा प्रेमकाव्य है जिसमे एक विफल-प्रणय तरुण-हृदय की बड़ी ही मार्मिक वेदना है। इसीलिए कवि को रति के संयोग और वियोग के चित्राकन मे काफी सफलता मिली है। प्रथम मिलन का चित्र देखिये—

शृंगार-रस

शीश रख मेरा सुकोमल जाँघ पर
शशि-कला-सी एक बाला व्यग्र हो
देखती थी म्लान-मुख मेरा अचल
सदय, भीरु, अधीर, चिन्तित दृष्टि से। (पृ० ८)
इन्दु पर, उस इन्दु-मुख पर, साथ ही
थे पड़े मेरे नयन, जो उदय से
लाज से रक्तिम हुए थे; पूर्व का
पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था! (पृ० ९)
एक पल मेरे प्रिया के दृग-पलक
थे उठे ऊपर, सहज नीचे गिरे
चपलता ने इस विकंपित-पुलक से
दृढ़ किया मानो प्रणय-सम्बन्ध था। (पृ० १०)

इसमे नायिका आलंबन, नायिका का सौंदर्य-उद्दीपन, नायिका का निरीक्षण, अनुभाव, लज्जा आदि संचारी तथा रति स्थायी है। यहाँ संयोग-सुख की ही प्राप्ति है, सभोग-सुख की नही; क्योकि प्रिय को प्रिया की प्राप्ति नही हुई।

अब वियोगजन्य विषाद का चित्र देखिये—

हाय मेरे सामने ही प्रणय का
ग्रन्थि-बन्धन हो गया, वह नव-कुसुम

मधुप-सा मेरा हृदय लेकर किसी—
अन्य मानस का विभूषण हो गया।

इस प्रकार इस लघु काव्य मे दर्शन, सौंदर्य, प्रेम, स्मृति, नियति, आशा, उन्माद, कल्पना, आँसू, वेदना, विरह, ससार, सुख, ज्ञान आदि विरह के उपकरणो पर सुन्दर उद्‌गार फूट पडे हैं। इसमे पूर्व-राग का अंकन सुन्दर हो पाया है जो संयोग की सीमा पर जा पहुँचा है।

रस-शास्त्र की दृष्टि से पंत के प्रणय-गीतो का रस भी शृंगार ही है जिसमे कवि का प्रेम (रति) स्थायी भाव है, नारी-सौंदर्य आलंबन, प्राकृतिक सौंदर्य उद्दीपन विभाव, कवि और उसकी प्रेयसी के पुलक, कंपन, स्तब्धता आदि अनुभाव और प्रेयसी की स्मृति एवं रूप-अनुमान आदि संचारी भाव है। एक-एक का उदाहरण देखिये—

स्थायी भाव—प्रेम :

एक पल, मेरे प्रिया के दृग पलक
थे उठे ऊपर, सहज नीचे गिरे,
चपलता ने इस विकंपित पुलक से
दृढ़ किया मानो प्रणय-संबंध था। (पृ० १०)

आलंबन विभाव—नारी-सौंदर्य :

लाज की मादक सुरा-सी लालिमा
फैल गालो मे, नवीन गुलाब-से,
छलकती थी बाढ़-सी सौंदर्य की
अधखुले सस्मित गढ़ों से, सीप-से। (पृ० १०)

उद्दीपन-विभाव—प्राकृतिक सौंदर्य :

शैवलिनी ! जाओ, मिलो तुम सिन्धु मे,
अनिल ! आलिंगन करो तुम गगन का
चंद्रिके ! चूमो तरंगों के अधर,
उडुगणो ! गाओ, पवन-वीणा बजा।

पर, हृदय ! सब भाँति तू कंगाल है,
उठ किसी निर्जन-विपिन मे बैठ कर
अश्रुओं की बाढ़ मे अपनी बिकी
भग्न-भावी को डुबा दे आँख-सी ! (पृ० ३५)

अनुभाव—प्रेयसी की शारीरिक अवस्था :

'नाथ !' कह, अतिशय मधुरता से दबे
सरस स्वर मे, सुमुखि थी सकुचा गयी;
उस अनूठे सूत्र ही मे हृदय के
भाव सारे भर दिये, ताबीज-से ।
देख रति ने मोतियो की लूट यह,
मृदुल गालो पर सुमुखि के लाज से
लाख-सी दी त्वरित लगवा, बन्द कर
अधर विद्रुम द्वार अपने कोष के ।
वह स्पृहा संकोच का सुन्दर समर
अधर कंपित कर, कपोलों पर युगल
एक दुर्बल लालिमा में था बहा;
(विश्व-विजयी प्रेम ! औ' यह भीरुता) (पृ० १२–१४)

सचारी भाव—रूप, अनुमान, स्मृति आदि :

स्मृति ! यदपि तुम प्रणय की पद-चिन्ह हो,
पर निरी हो बालिका—तुम हृदय को
गुदगुदाती हो, तरल जलबिंब-सी
तैरती हो, बाल-क्रीड़ा कर सदा । (पृ० २८)

पंत की शृंगार-सम्बन्धी कविता बहुलाश मे भावात्मक है, इसीलिए जितना आलंबन, उद्दीपन और संचारियो का वर्णन हुआ है, उतना आलम्बन का विशद् वर्णन नही मिलता। शृंगार-रस से वेष्टित कविताओ मे स्नेह, उच्छ्वास की बालिका, आँसू की बालिका, आँसू से, ग्रन्थि आदि हैं। कवि द्वारा शृंगार-रस की व्यंजना अत्यन्त विस्तृत

एवं सूक्ष्म हुई है। 'ग्रन्थि' में कहीं कहीं पर शांत-रस की भी छाया दीख पड़ती है। सच तो यह है कि शृंगार-रस के पश्चात् शान्त-रस की ही अधिकता है।

'ग्रन्थि' के सम्बन्ध में डा० नगेन्द्र ने ठीक ही लिखा है कि 'ग्रन्थि प्रेम-कहानी है, उसका शृंगार विप्रलम्भ है, आरम्भ में उसमें पूर्वराग का भी अच्छा विकास है, इस प्रकार से यह पूर्वराग कुछ अंश में संयोग की सीमा तक पहुँच गया है। इस स्थायी भाव के अतिरिक्त शृंगार के प्रमुख संचारियों एवं सात्त्विकों की भी 'ग्रन्थि' में न केवल व्यञ्जना है, वरन् विवेचना भी है। यह विवेचना आचार्य-कृत विवेचना नहीं, कवि की विवेचना है, अतः स्वभावतः ही भावुकता में लिपटी हुई है।'

पंत की कविताओं में करुण-रस की व्यञ्जना नहीं हो पायी है; क्योंकि उसने मुक्तक गीत लिखे हैं न कि प्रबन्ध। प्रबन्ध में ही रसों की योजना सम्यक् रूप से हो पाती है। अस्तु, करुण-रस की मार्मिक व्यञ्जना के लिए कवि को गुंजाइश नहीं है। एक उदाहरण लीजिये—

अभी तो मुकुट बँधा था माथ
हुए कल ही हलदी के हाथ
खुले भी न थे लाज के बोल
खिले भी चुम्बन-शून्य कपोल
हाय रुक गया यहीं संसार
बना सिंदूर अंगार

—इसमें पति-वियोग काव्यगत आलम्बन है और विधवा रसिक-गत। पति की वस्तुओं का दर्शन काव्यगत और हलदी के हाथ होना, संसार का रुक जाना अर्थात् चूड़ी पहनना, सुहाग की बिंदी लगाना आदि का अभाव हो जाना काव्यगत उद्दीपन है; रुदन आदि अनुभाव और चिंता, विषाद आदि संचारी भाव हैं।

सच तो यह है कि पंत भावों के कवि है, न कि रसों के। भावों

के माध्यम से पत का कवि रसो का उद्रेक करता है। उसका लक्ष्य

उपसंहार

रसोत्पत्ति पर अवलम्बित नही रहा, बल्कि अपने अन्तःप्रदेश के भावो की व्यञ्जना पर। यही कारण है कि कवि ने रस-सृष्टि की वारीकियो की ओर कतई ध्यान न देकर भावो के माध्यम से रस की सृष्टि की। पत की काव्य-तूलिका ने सिर्फ शृगार, करुण और शान्त रस के भावो को ही चित्रो मे अंकित किया है, जो अपने ढग की मूल्यवान् वस्तु है। 'ग्रन्थि' तो विप्रलंभ-शृंगार का अनूठा काव्य है।



शीर्षक की सार्थकता

किसी भी साहित्यिक कृति की उत्कृष्टता के विधायक तत्त्वों में शीर्षक का भी अन्यतम महत्त्व है, क्योंकि शीर्षक के पीछे साहित्य-स्रष्टा का एक उद्देश्य छिपा रहता है। यही कारण है कि रचनाकार अपनी कृति के नामकरण में बिलकुल सतर्क रहता है। किसी भी कृति का उपयुक्त नाम उद्देश्य पर काफी तौर से प्रकाश डालता है। यदि कृति का शीर्षक आकर्षक एवं उपयुक्त न हुआ तो उसका महत्त्व एवं मूल्य कम हो जाता है। यही कारण है कि शीर्षक के चुनाव में कवि उतना ही सचेत रहता है जितना जीवन में प्रवेश करने वाला व्यक्ति व्यवसाय के चुनाव में। वस्तुतः कला की अधिकाश प्रभाव-प्रेषणीयता इसी शीर्षक पर निर्भर करती है। शीर्षक ऐसा हो जो पाठकों के हृदय में कौतूहल और जिज्ञासा का भाव भर दे जिससे पुस्तक पढ़े बिना वह न रह सके। कुछ आकर्षक शीर्षकवाले काव्य-ग्रंथों के नाम देखिये—

शीर्षक के चयन के लिए अपेक्षित गुण

दीपशिखा—श्रीमती महादेवी वर्मा।

अनामिका—श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'।

कामायनी —श्री जयशंकर प्रसाद।

साकेत —श्री मैथिलीशरण गुप्त।

रश्मिरथी —श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'।

प्रधान घटना से सम्बन्धित काव्यग्रंथों के शीर्षक है—प्रियप्रवास, जयद्रथ-वध, मेघनाद-वध आदि।

प्रधान चरित्र पर आधारित शीर्षक है—कामायनी, यशोधरा, पथिक, तुलसीदास आदि।

घटनास्थल पर आधारित शीर्षक है—पंचवटी, कुरुक्षेत्र, हल्दी

घाटी आदि ।

प्रधान भाव या समस्या पर आधारित शीर्षक है—स्वप्न, नीहार, आँसू, उच्छ्वास आदि ।

वस्तुतः किसी काव्यग्रंथ के शीर्षक के चयन में निम्नलिखित गुणों का होना अत्यन्त आवश्यक है—(क) पुस्तक का शीर्षक विषय से सम्बन्धित हो । (ख) पुस्तक का शीर्षक ऐसा हो कि जिसमें पाठकों के मन में पुस्तक पढ़ने की उत्सुकता उत्पन्न करने की क्षमता हो । कहने का तात्पर्य यह है कि ग्रथ का शीर्षक भ्रामक नही होना चाहिए, नही तो ग्रंथकार पाठकों के मन पर अभीष्ट रूप से प्रभाव डालने में असफल हो सकता है । अतः ग्रथकार के लिए शीर्षक के चुनाव में अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है । शीर्षक आकर्षक होने के साथ-साथ विषय-परिचायक होना चाहिए, अन्यथा वह प्रभावान्विति में सफल नही हो सकता । वस्तुतः शीर्षक तभी आकर्षक कहा जा सकता है जब पुस्तक का नाम देखते ही पाठक का मन उसके प्रति उत्सुकता और उत्कंठा से इतना भर जाय कि उससे पढ़े बिना रहा ही न जाय । शीर्षक के चुनाव के सम्बन्ध में शास्त्रकारों की ओर से भी कुछ संकेत प्राप्त है । उसके अनुसार उसका शीर्षक यदि दो-तीन शब्दों से अधिक का न हो तो वह अधिक अच्छा होता है । इसके चुनाव में अधिक सतर्क रहने की आवश्यकता है । शीर्षक प्रायः पात्र-पात्री के नाम पर या उनकी किसी विशेष मनोवृत्ति के आधार पर या किसी घटना या समस्या पर रक्खा जाता है । सुतरा, ग्रंथ का समग्र आकर्षण शीर्षक (या नामकरण) में निहित रहता है ।

शीर्षक की सार्थकता के तर्क

जहाँ तक पंत के इस काव्य-ग्रंथ के नामकरण का प्रश्न है, वहाँ तक हम कह सकते है कि इस काव्य-ग्रंथ का नामकरण प्रधान घटना के आधार पर हुआ है, क्योंकि कवि का मुख्य उद्देश्य है अपने हृदय में पड़ी ग्रन्थि को अभिव्यक्त करना । यह प्रेम पर रचित पंत का प्रथम काव्य

है। कवि नौका-विहार करते हुए सरोवर में जा डूबता है। एक अनजान बालिका ने कवि के प्राण को बचा लिया। दोनों की आँखें चार हो जाती हैं और दोनों एक दूसरे से प्रेम करने लगते हैं। और, एक दिन कवि की प्रणयिनी का ग्रन्थि-बन्धन अन्य व्यक्ति से हो जाता है और उसके वियोग से कवि के हृदय में जो गाँठ पड जाती है, वह कदाचित् कभी खुल नहीं पाती। इसी दुर्घटना के आधार पर कवि विप्रलम्भ-शृंगार में 'ग्रन्थि' की रचना करता है। इसमें कवि के विरह-दग्ध हृदय के उद्‌गार प्रस्फुटित हुए हैं। इस घटना से कवि को हाथ लगती है घोर निराशा !

गिर पड़ा वह स्वप्न मेरा अश्रु-सा
पलक-दल को छू अचानक, कमल के
अंक से अटका तुहिन-जल अनिल की
एक हलकी थपथपी से सो गया !

हाय ! मेरे सामने ही प्रणय का
ग्रन्थि-बंधन हो गया, वह नव-कमल
मधुप-सा मेरा हृदय लेकर, किसी
अन्य मानस का विभूषण हो गया।

× × ×

हाय रे मानव हृदय ! तुझसे जहाँ
वज्र भी भयभीत होता है, वहीं
देख तेरी मृदुलता तिल सुमन भी
संकुचित हो सहम जाता है अहा !
ग्रन्थि-बंधन !—इस सुनहली ग्रन्थि में
स्वर्ग की औ' विश्व की मंगलमयी
जो अनोखी चाह, जो उन्मत्त धन
है छिपा, वह एक है, अनमोल है !

अस्तु, उद्देश्य की दृष्टि से प्रस्तुत काव्य-ग्रंथ का शीर्षक उचित है,

क्योकि कवि ने हृदय की गाँठ को काव्यात्मक पंक्तियो मे अभिव्यक्त किया है। असफल प्रेम को कवि ने वाणी दी है और उसका प्रभाव पाठको पर भी पडता है, इस दृष्टि से भी 'ग्रन्थि' नाम सार्थक है।

उपसंहार

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने लिखा है कि 'ग्रन्थि का लेखनकाल वही है जब कवि मध्यकाल और द्विवेदी-युग की कविता का अध्ययन कर रहा था।' इस काव्यग्रंथ के नामकरण के पीछे युग-धर्म की भावना भी व्याप्त है। वह हिन्दी का रोमास-युग था। उन्होने तत्कालीन रोमास की घटना को व्यक्त किया है और इसीपर 'ग्रन्थि' शीर्षक आधारित है। इस दृष्टि से शीर्षक सार्थक, साभिप्राय एवं उचित है। इसका शीर्षक साभिप्राय एवं सार्थक होने के अतिरिक्त आकर्षक, प्रभावशाली एवं अत्यन्त कौतूहल-वर्द्धक भी है। इसके अतिरिक्त, इस काव्यग्रथ का शीर्षक देखते ही पाठको का मन उत्सुकता से भर जाता है। 'ग्रन्थि' क्या है? यह 'ग्रन्थि' किस प्रकार की है?—आदि प्रश्न पाठको के हृदय मे जाग्रत होते है। जिज्ञासा और कौतूहल से पाठक का मन भर जाता है और वे इसे एक बार पढ़े बिना नही रह पाते है। इस दृष्टि से भी 'ग्रन्थि' शीर्षक रोचक, कौतूहल-वर्द्धक एवं अत्यन्त आकर्षक है। इस काव्य का शीर्षक एक शब्द का है। इस प्रकार के उदाहरण अंग्रेजी-साहित्य मे भी है—जैसे, Sordella (Browning), The Giaour (Lord Byron), Hyperion (John Keats), Isabella (John Keats), Endymion (John Keats) Don Juan (Lord Byron) आदि। वस्तुतः इसका शीर्षक Lord Tennyson के The Dream of Fair Women; Sir Walter Scott के The Lady of the Lake; William Morris के The Defence of Guinevere; T. S. Eliot के Murder in the Cathedral; W. B. Yeats के The Lake Isle of Innisfree; Charles Swinburne के The Garden of

Proserpine; Robert Browning के The King and the Book; Sir Walter Scott के The Minstrveley of the Scottish Boarder आदि के समान उतना लम्बा नहीं है। एक शब्द का शीर्षक होने के कारण 'ग्रन्थि' अत्यन्त आकर्षक है और इससे प्रभावान्विति में बाधा भी नहीं होती है। इस दृष्टि से भी इस काव्यग्रथ का शीर्षक अत्यन्त सफल एवं सार्थक है। समग्र दृष्टि से देखने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'ग्रन्थि' का शीर्षक अत्यन्त सार्थक, कौतूहल-वर्द्धक, विषय-परिचायक एवं प्रभावशाली है।



प्रकृति-चित्रण और 'ग्रन्थि'

मानव प्रकृति के आँगन मे जन्म ग्रहण करता है और अपने को चारो ओर से प्रकृति की नैसर्गिक सुषमा से घिरा पाता है। अतएव जब वह शिशु-जन्म ग्रहण करता है, तब वह अबोध शिशु के समान 'धूल की ढेरी मे अनजान' बनकर क्रीड़ा करता है और ईश्वर-प्रदत्त वाणी का सम्बल पाकर उस सुषमा के प्रति आत्म-निवेदन करने की आकांक्षा रखता है। धीरे-धीरे उस अनजान शिशु का ज्ञान विस्तृत होता है और उसकी आश्चर्यमयी सुषमा को देखकर विस्मय-विमुग्ध हो जाता है।

मानव और प्रकृति का सम्बन्ध

वस्तुतः 'ज्ञान और चेतना के उदय-काल से ही मानव-हृदय प्रकृति के प्रति संवेदनशील है। सभ्यता के उदय-काल मे जब उसने अपने चारो ओर व्याप्त प्रकृति के जटिलतम रहस्यो को देखा, तब उसके हृदय मे उनके प्रति जिज्ञासा हुई। अपने अनन्य एवं अनन्त निरीक्षण के पश्चात् उसने इस बात का अनुभव किया कि प्रकृति का सहवास अत्यन्त कोमल एवं आनन्ददायी है और प्रकृति मे ही मनुष्य के सुकुमार मनो-भावो तथा वृत्तियो के परितोष के लिए समुचित सामग्री है। इस प्रकार मानव को प्रथम काव्य की प्रेरणा प्रकृति से मिली। उसने अपनी संवेदना जाग्रत की और असीम आनन्द का अनुभव किया, उसकी कल्पना को शक्ति मिली और प्रथम कवि की वाणी से निःसृत होकर काव्य का आदिम स्वरूप हमारे सामने आया। फिर तो धीरे-धीरे काव्य जीवन का एक अंग होता गया और प्रकृति अभिन्न सहचरी।' यह तो सत्य ही है कि मानव के ज्ञानमय चक्षु के खुलने के समय चतुर्दिक् फैली हुई विराट् प्रकृति 'नाना रूप-रस-गंध और ध्वनि-रंग-राग की सुषमा-राशि से' अपना शृंगार कर खड़ी थी। फलतः प्रकृति

की आँख, अधर, भौंह, भृकुटि, कपोल, नाक, कटाक्ष आदि का वर्णन कर अपनी काव्यमय प्रतिभा का दुरुपयोग किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि रीतिकाल में मानवेतर प्रकृति की उपेक्षा अधिक की गयी। रीतिकालीन कवियों ने पार्थिव सौन्दर्य को सर्वोपरि महत्त्व दिया। रीतिकाल के पूर्व वीरगाथा-काल और भक्ति-काल रहा है। इस युग में कवियों की दृष्टि प्रकृति की ओर नहीं गयी थी।

पंत की दृष्टि में प्रकृति

पंत को कवि बनाने का श्रेय प्रकृति को है और प्रकृति को चेतन बनाने का सेहरा पंत को। पंत को प्रकृति के तन-मन का सहज ज्ञान है, क्योंकि उन्होंने उसके सूक्ष्म स्पंदनों की धड़कन सुनी है और कवि की प्रतिभा ने प्रकृति के रम्य प्रांगण में रास रचाया है। यही कारण है कि पंत ने प्रकृति को जड और मृतक नहीं, वरन् चेतन-सम्पन्न माना है। उसमें मानव-हृदय की संवेदनशीलता है, क्योंकि वह मानव-हृदय के प्रेम को समझने में समर्थ है। सभी छायावादी कवियों में सामान्य रूप से यही भावना व्याप्त है। इस प्रकार कवि और प्रकृति एक दूसरे के लिए आलम्बन हैं। पंत ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि 'कविता करने की प्रेरणा सबसे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्मांचल प्रदेश को है। कवि-जीवन से पहले भी, मुझे याद है, मैं घंटों एकांत में बैठा, प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था; और कोई अज्ञात आकर्षण, मेरे भीतर, एक अव्यक्त सौंदर्य का जाल बुनकर चेतना को तन्मय कर देता था।' फलतः कवि का प्रधान विषय है प्रकृति और गौण है मानव। ठीक यही बात बायरन के साथ लागू होती है। बायरन ने स्वयं लिखा है कि 'मैं मनुष्य से कम प्यार नहीं करता, पर प्रकृति से अधिक प्यार करता हूँ।'[3]

हिन्दी की प्राचीन कविता पर जिस प्रकार संस्कृत का प्रभाव है

---

[3] I love not man the less, but nature more—Byron

उसी प्रकार आधुनिक कविता मे अंग्रेजी का प्रभाव लक्षित होता है।

अंग्रेजी की प्रकृति-कविता का इस युग की प्रकृति-परक कविता पर प्रभाव

फलतः इस प्रभाव से इस युग की कविता अन्तर्वृत्ति-निरूपिणी (Subjective) हो गई जिसके कारण आलम्बन और उद्दीपन की कमी हो गई और अप्रस्तुत रूप-विधानो का प्राचुर्य हो गया। शेली, कीट्स और वर्ड्सवर्थ की कुछेक कविताएँ इसी कोटि की है। 'उपर्युक्त कवियो मे से वर्ड्सवर्थ और कोलरिज का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक है, यद्यपि श्रीयुत पंत-ऐसे कवियो पर शेली का प्रभाव अधिक जान पड़ता है। किसी के प्रभाव पडने से मेरा तात्पर्य यह नही है कि उसकी नकल की गई है। मेरा मतलब केवल इतना ही है कि उस प्रकार की कविता अधिक पाई जाती है और परिस्थितियो को देखते हुए ऐसा जान पड़ता है कि यह इंगित वही से मिला है। वर्ड्सवर्थ और कोलरिज दोनो की प्रकृति प्रकृति मे परोक्ष सत्ता का संकेत पाने की ओर थी। यह प्रवृत्ति हिन्दी मे भी है। दोनों यह जानने की कोशिश करते थे कि हमारे परिस्थिति-रूपी पर्दों के पीछे कौन-सी परोक्ष सत्ता काम कर रही है। प्रकृति के द्वारा प्रकृति के कर्त्ता को देखने की ओर उनकी प्रवृत्ति थी। वर्ड्सवर्थ की आरंभिक कविता मे हमे प्रकृति के बड़े सूक्ष्म और संश्लिष्ट चित्र मिलते हैं, परन्तु उनके प्रौढ़ काल की कविता मे यह बात नहीं है। उसमे कवि ने प्रकृति मे एक अनंत सत्ता का अनुभव किया है और एक आभ्यन्तर संसार की खोज की है। कवि ने स्वयं अपने दोनो रूपों को—प्रकृति के सीधे-सादे सच्चे उपासक के रूप को और आध्यात्मिक सिद्धांतवादी रूप को—स्वीकार किया है। प्रकृति के सीधे-सादे रूप के उपासक के चले जाने पर आध्यात्मिक सिद्धांतवादी का जन्म हुआ। ... इस प्रकार की परोक्ष सत्ता का बडा सुन्दर संकेत कवि की बाल्यावस्था की स्मृति द्वारा अमरत्व का 'संकेत' (Ode on Intimations of Immortality from Recollections of Early

Childhood) नामक कविताओं मे मिलता है। कोलरिज (Coleridge) मे भी कुछ-कुछ इसी प्रकार की भावना पायी जाती है। दोनों ही कवि प्रकृति को ब्रह्म की प्रत्यक्ष विभूति मानते थे और उसीमे उसके दर्शन करते थे। कोलरिज प्रकृति की अंतरात्मा को देखते थे। वे उसमे ईश्वरीय शक्ति का अनुभव करते थे। यह बात उनकी कुछ कविताओं और विशेषतया उनके फुटकर नोट्स से स्पष्ट हो जाती है जो कि कुछ तो लिटररी रिमेन्स (Literary Remains) नामक पुस्तक मे है और कुछ अनीमा पोयटिक (Anima Poetic) नामक पुस्तक मे उनके पौत्र हार्टली कोलरिज द्वारा प्रकाशित किये गये हैं। इस दूसरी पुस्तक मे बडे सुन्दर शब्द-चित्र और आश्चर्योत्पादक विचार भरे पडे हैं जिनके द्वारा कवि की कला और उसकी प्रकृति के प्रति भावना समझने मे बडी सहायता मिलती है। उनकी प्रवृत्ति का परिचय इन पंक्तियों से हो जायगा—

But thou, my babe! shalt wander like a breeze
By lake and sandy shores beneath the crags,
Of ancient mountains, and beneath the clouds
Which image in their bulk both lakes and shores.
And mountain crags; So shalt thou see and hear.
The lovely shapes and sounds intelligible
Of that eternal language, which thy God
Utters ....

परन्तु कवि प्रकृति की सुन्दरता की ओर से उदासीन नहीं है। यह बात उनके 'अनीमा पोयटिक' से ज्ञात होती है जिसमे रात्रिके अनेक शब्द चित्र भरे हैं। और जो उनके जाग्रत स्वप्नों (Nocturnal Reveries) से पूर्ण है। आधुनिक काल की नवीन ढग की कविताओ मे प्रकृति के प्रति ऐसी ही रहस्य और परोक्ष सत्ता की भावना पायी जाती है।'[४]

४ हिन्दी काव्य में प्रकृति—श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव, पृ० ७२-७४।

हिन्दी कविता मे मानवेतर वाह्य प्रकृति का विभिन्न रूपो मे उपयोग होता रहा है। कविता की रचना मे कवि को किसी-न-किसी रूप मे प्रकृति का आश्रय ग्रहण करना ही पडता है, उसके बिना कविता की सरसरता दूर भाग खडी होती है। शुद्ध मानव-जीवन सम्बन्धी कविता मे भी प्रकृति परोक्ष रूप से अवश्य आती है। हिन्दी कविता मे हम यह देखते आये हैं कि कवियो ने सुन्दर स्त्री के सौन्दर्य का चित्र अंकित करने के लिए प्राकृतिक अवयवों का आश्रय ग्रहण किया है जिससे यह स्पष्ट होता है कि कविता के लिए प्रकृति एक अनिवार्य तत्त्व है। 'प्रकृति के अनन्त रमणीय प्रसार मे काव्योपयोगी असीम सौन्दर्य, अगाध माधुर्य, अगणित रंजनकारी ध्वनियॉ, आकर्षक वर्ण रूप, आकृतियॉ, भरी पडी है। रूप-माधुर्य के इस अक्षय भण्डार से काव्य अपने को सदा श्री-सम्पन्न रखता है। उसमे प्रकृति का ग्रहण विभिन्न रूपो मे होता है।[५] आधुनिक काल मे प्रकृति निरूपण की निम्नलिखित विधाऍ

काव्य में प्रकृति के विभिन्न प्रयोग

---

५ विलियम हेनरी हडसन ने अपनी पुस्तक 'An Introduction to the Study of Literature' के 'On the Treatment of Nature in Poetry' नामक परिशिष्ट (Appendix) मे कविता मे प्रकृति के निम्नलिखित रूपों का प्रयुक्त होना बतलाया है—The poetry of simple delight in nature; The poetry of Nature's sensous beauty, The metaphorical use of Nature; Nature as background; The poetry of Association, The poetry of set description; Indifference of Nature; The Sympathy of Nature; the Subjective treatment of Nature. जे० सी० शार्प (J. C. Shairp) ने भी 'Poetic Interpretation of Poetry' में कुछ इसी प्रकार का विभाजन किया है परन्तु हडसन ने उसमें कुछ परिवर्द्धन किया है।

प्रचलित है—आलंबन रूप, उद्दीपन रूप, रहस्य-भावना की अभिव्यक्ति, मानवीकरण, पृष्ठभूमि व वातावरण-निर्माण, दार्शनिक तथ्य, अप्रस्तुत योजना, प्रतीकात्मक, उपदेशात्मक, अलंकार रूप, प्रकृति-चित्रण, समासोक्ति पद्धति एवं अन्योक्ति पद्धति आदि। इनमें से किसी एक रूप में किये जाने वाले प्रकृति-चित्रण में दूसरे रूप या रूपों से भी सहायता ली जा सकती है। पंत द्वारा प्रकृति-चित्रण में ये विधाएँ किस सीमा तक विद्यमान हैं, इस पर विचार करना आवश्यक है।

पंत छायावाद के कवि हैं, न कि द्विवेदी युग के। प्रकृति का उपयोग आलम्बन रूप में होता आया है क्योंकि इसी के द्वारा भावों का उदय होता है। आलम्बन का अर्थ ही है आश्रय, जिसके हेतु भाव आश्रित हों, वही आलम्बन कहा जाता है। अतएव भावों का विषय है आलंबन। 'बिम्ब ग्रहण करना ही कवि का काम है और इसके लिए चित्रण ही काव्य का प्रथम विधान है। अतः भावों के विषय अथवा प्रकृत आधार का कल्पना द्वारा संश्लिष्ट और ब्योरेवार चित्रण ही कवि का सर्वप्रथम आवश्यक कार्य है। प्रकृति का ग्रहण आलम्बन के रूप में किस स्थल पर हुआ है इसका पता उस स्थल की वर्णन-प्रणाली के देखने से लग जायगा। कवि जहाँ बिम्ब ग्रहण कराने की चेष्टा करेगा वहाँ प्रकृति का वर्णन आलम्बन के रूप में ही होगा। ऐसे स्थलों पर कवि का निरीक्षण बड़ा सूक्ष्म होता है। वह वस्तुओं के अंग-प्रत्यंग, वर्ण, आकृति तथा उनके चारों ओर की परिस्थिति से संबद्ध संश्लिष्ट चित्र उपस्थित करता है। कवि के विशेष अनुराग के बिना ऐसे सूक्ष्म ब्योरों और परिस्थितियों पर दृष्टि न तो जायगी ही और न टिकेगी ही। अतएव सूक्ष्म विवरण-युक्त, संश्लिष्ट और पूर्ण वर्णनवाले स्थानों पर प्रकृति का ग्रहण आलम्बन के रूप में समझना चाहिए। मानवेतर बाह्य प्रकृति का आलम्बन के रूप में चित्रण छायावादी कविता में बहुत कम हुआ है। एक उदाहरण लीजिए—

आलंबन के रूप में प्रकृति का वर्णन

वह मधुर मधुमास था, जब गंध से
मुग्ध होकर झूमते थे मधुप दल;
रसिक पिक से सरस तरुण रसाल थे
अवनि के सुख बढ़ रहे थे दिवस-से।

हिन्दी-कविता मे उद्दीपन रूप मे प्रकृति का उपयोग अत्यधिक हुआ है। हिन्दी-साहित्य का कोई भी युग इससे अछूता नहीं है। उद्दीपन का शाब्दिक अर्थ है—उद्दीप्त करना, अभिवृद्धि करना, आदि। 'जब लौकिक आलंबन—विशेषतः मानव—के प्रति जगे हुए रतिभाव को प्रकृति के द्वारा और अधिक बढ़ाकर आश्रय या भाव के अनुभवकर्त्ता को अनेक मार्मिक स्थितियो के बीच दिखाया जाता है वहाँ प्रकृति का चित्रण उद्दीपन रूप मे हुआ कहा जाता है। प्रकृति जगे हुए भाव को दो रूपो मे उद्दीप्त करती है—(१) संयोग के क्षणो मे मिलने की भावना को अभिवृद्धि कर आश्रय का आत्मोत्कर्ष करने मे सहायक होती है, उसे रोमाच, पुलक व प्रेमाश्रु की उल्लासमयी मानसिक भूमिका पर उठा ले जाती है, और (२) वियोग के क्षणो मे प्रिय-विरह-जन्य व्याकुलता उत्पन्न करके उसे दाह और रुदन का अनुभव कराती है। आलंबन रूप के चित्रण मे कवि या पात्र का प्रकृति से सीधा सम्बन्ध होता है किन्तु यहाँ परोक्ष। इसमे मानव ही प्रमुख होता है, प्रकृति गौण। प्रकृति का इस रूप मे चित्रण शृङ्गार रस के उद्दीपन पक्ष मे ही किये जाने की बँधी बँधाई साहित्यिक परम्परा है। है भी यह बहुत स्वाभाविक। यह तथ्य मनोविज्ञान-सम्मत है कि हम अपनी अभीष्ट वस्तु या प्रिय की प्राप्ति से असीम आनन्द का अनुभव करते है और उसके बिछोह या नाश से उसी अनुपात मे दुःख का। यह सुख-दुःख की अनुभूति अन्य मानव-सम्बन्धो की अपेक्षा प्रणय-सम्बन्धो मे ऐसा वेग व तीव्रता धारण करती है क्योकि आलंबन से शारीरिक, मानसिक व आत्मिक तीनो रूपो मे सम्बद्ध होने के कारण आश्रय का सम्पूर्ण

उद्दीपन रूप में प्रकृति

अस्तित्व प्रभावित होता है। यह अनुभूति हमारे हृदय तक ही सीमित न रह कर हमसे फूट-फैल कर समस्त चराचर जगत् या प्रकृति तक परिव्याप्त हो जाती है। उन्हीं क्षणों में हम सौन्दर्य का सर्वाधिक अनुभव करते हैं।[६] उद्दीपन रूप में प्रकृति जड़ रूप में भी चित्रित होती है और चेतन रूप में भी।''''छायावाद में प्रकृति का चेतन रूप ही अधिक ग्रहण किया जाता है। अतः प्रकृति व मानव के पारस्परिक संबंध निम्नलिखित रूपों में संघटित होते हुए दिखाई पड़ते हैं—(१) मानव दुःखी तो प्रकृति भी दुःखी। (२) मानव सुखी तो प्रकृति भी सुखी। (३) मानव दुःखी किन्तु प्रकृति सुखी। (४) मानव सुखी किन्तु प्रकृति दुःखी। मुख्यतः इन चार प्रकार के पारस्परिक व्यवहारों के निरूपण तक ही उद्दीपन-गत-प्रकृति-चित्रण की व्याप्ति समझी जा सकती है।'[७] अतएव यह स्पष्ट हो जाता है कि उद्दीपन वही है जो आलंबन के द्वारा आश्रय के हृदय में उत्पन्न भावों को उद्दीप्त करे अर्थात् बढ़ावे। हिन्दी के प्राचीन कवियों के लिए यह मार्ग अत्यन्त सरल था, वह उनके लिए राजपथ था। प्राचीन कविताओं में नायक-नायिका के मनोविकारों को उद्दीप्त करने के लिए इसका प्रयोग होता

---

६ 'So the esthetic emotion (Part of that 'Tender emotion' which accompanies the instinct of love) may overflow from the person desired to the objects attached to her, to her attitudes and forms, to her manners of action and speech. and to anything that is hers by possession or resemblance, All the world comes to partake of the fair one's Splendour"— Will. Durant : : The Mansions of Philosophy (1929), Page 290.

७ कविता में प्रकृति-चित्रण, पृ० १५६–८।

था परन्तु छायावाद-युग मे प्रकृति स्वयं कवि के मनोविकारो को उद्दीप्त करती है। 'साथ ही प्रकृति मे चेतन सत्ता का आरोप होने के कारण प्रकृति की वस्तुएँ कवि के साथ सहानुभूति दिखाती और उसके सुख-दुःख मे सम्मिलित होती है। इस प्रकार उद्दीपन रूप मे होते हुए भी प्रकृति का कवि के साथ तादात्म्य प्रकट होता है।' यही कारण है कि पंत की कविताओ मे कीट्स की तरह प्रकृति के ऐन्द्रिक (Sensuous) चित्रो जा प्राबल्य है। कुछ उदाहरण लीजिए—

शैवलिनी ! जाओ, मिलो तुम सिन्धु में,
अनिल ! आलिंगन करो तुम गगन को
चन्द्रिके ! चूमो तरंगों के अधर,
उडुगणों ! गाओ, पवन-वीणा बजा।
पर, हृदय ! सब भाँति तू कंगाल है,
उठ किसी निर्जन-विपिन मे बैठ कर
अश्रुओ को बाढ़ में अपनी बिकी
भग्न-भावी को डुबा दे आँख-सी !
(प्रकृति के प्रति विरही हृदय की दशा)

यो तो छायावादी कविता से उद्दीपन-रूप मे प्रकृति चित्रण की प्रवृत्ति बहुत ही कम गयी है परन्तु अप्रस्तुत रूप-विधान की प्रधानता बढ़ गयी है। इसका यह तात्पर्य्य नही कि प्राचीन हिन्दी कवियो की कविताओं में यह गुण विद्यमान नही है, प्रत्युत् छायावादी कविता मे इस प्रवृति को हम व्यापक रूप मे पाते है। 'अप्रस्तुत' का सम्बन्ध वैसे वर्णनो से है जिसमे 'प्राकृतिक रूपविन्यास प्रस्तुत के रूप मे होते हुए भी उपमा-उत्पेच्चा-प्रधान होता है अर्थात् जिसमे प्राकृतिक रूप-व्यापारो के ऊपर अप्रस्तुतो की इतनी भरमार होती है कि प्रस्तुत दबकर गौण हो जाता है।' कहने का अर्थ यह है कि कवि प्रकृति का चित्रण न कर उसे विभिन्न प्रकार के अप्रस्तुतो की व्यंजना का साधन बनाता है। इसीलिए

अप्रस्तुत रूप-विधान और प्रकृति

यह प्रकृति का अप्रस्तुत-वर्णन कहा जाता है। पंत ने अप्रस्तुत-वर्णन के लिए प्रकृति का भी उपयोग किया है। इनकी कविता में अप्रस्तुत-रूप-विधान भाव-व्यंजक है, जटिल कल्पना कम। उन्होंने अपनी कविताओं में नये-नये उपमानों की रचना की है और वह उनकी सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षण की परिचायिका है। जहाँ हमारे प्राचीन कवियों ने अप्रस्तुत-रूप-विधान के लिए रूप-रंग की समानता को दृष्टि में रखा है वहाँ छायावादी कवियों (पंत, प्रसाद, निराला) ने प्रभाव साम्य या साधारण-सा हल्का संकेत लेकर भी निःशंक अप्रस्तुत-योजना की है। जैसे—

(क) हास-सरिता में सरोजों से खिले
गाल के गहरे गढ़ों को मधुप- से
चुम्बनों से, हा नहीं जिसने भरा,
उस खिली चम्पाकली ने क्या किया ?

(ख) सांध्य निःस्वन से गहन जल गर्भ में
था हमारा विश्व तन्मय हो गया।

(ग) जब अचानक अनिल की छवि में पला
एक जलकण जलद शिशु-सा पलक पर
आ पड़ा सुकुमारता सा गान-सा
चाह-सा, सुधि-सा, सगुन-सा, स्वप्न-सा।

प्रतीकात्मक प्रकृति-चित्रण

छायावाद-युग के कवियों ने अपनी कविताओं में प्रतीकों का व्यवहार अत्यधिक किया है। डा० केसरीनारायण शुक्ल के शब्दों में—'कवि भावाभिव्यंजन के क्षेत्र में इनकी महत्ता को अच्छी तरह समझते हैं। ये जानते हैं कि साधारण वक्तव्य की अपेक्षा प्रतीकों के द्वारा सत्य को अधिक प्रभावोत्पादक, मार्मिक और संक्षिप्त रूप में प्रकट किया जा सकता है। ये जानते हैं कि प्रतीकों का प्रयोजन उपदेशात्मक नहीं

है। इनका उद्देश्य सत्य को सौन्दर्य से समन्वित करना है। वे यह भी जानते हैं कि काव्य मे प्रतीको का उद्देश्य केवल सजावट नहीं है, प्रत्युत ये काव्य के आधारभूत अंग हैं। केवल कवि के भावावेश मे उद्भूत प्रतीक ही पाठको मे वैसी भावना जगाने मे समर्थ होते हैं। ऊपरी बुद्धि द्वारा सजावट के लिए गढ़े हुए प्रतीको का विश्लेषण करने पर उनमे सच्ची सौंदर्य-भावना का अभाव तथा शिथिलता लक्षित होती है। सुन्दर लय के समान सौन्दर्यपूर्ण उपमान और प्रतीक भी कवि की सच्ची भावानुभूति के द्योतक है। इन प्रतीकों का अपनी परम्परा, इतिहास, जलवायु तथा जाति के आचार-विचार से घनिष्ट संबंध होता है। प्रत्येक देश के प्रतीको का अपना समूह होता है जिनके द्वारा देशवासी अपने सुख-दुख, मृत्यु, स्वर्ग, नरक आदि की भावना को प्रकट करते है। इस प्रकार उष्ण देशो की भीषण उष्णता नरक की ज्वाला का प्रतीक बन गयी और ठंढे देशों की घोर शीतलता भी नरक मानी जाने लगी। बसंत तथा ग्रीष्म हर्ष और दुख के द्योतक माने गए। इसलिए दूसरी भाषाओ के प्रतीको का अपने साहित्य मे समावेश करते समय अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है, क्योकि उन भाषाओ से अपरिचित पाठकों के लिए अधिकाश विदेशी प्रतीक अर्थहीन सिद्ध होगे। वर्त्तमान कवि परम्परा से प्राप्त चंद्र, कमल आदि प्रतीको से संतुष्ट नही है। वे अपनी रचनाओ को मार्मिक तथा प्रभावोत्पादक बनाने के लिए नये प्रतीको की उद्भावना कर रहे है। इस प्रकार उषा इन कवियो के लिए स्फूर्ति, जीवन के आरम्भ और सुख का प्रतीक बन गई है। संध्या जीवन के अवसान, एकात तथा दुख का द्योतन करती है। प्रकाश सुख को और अन्धकार निराशा को सूचित करता है। स्वर्ण मे दीप्त तथा काति की भावना है। इन प्रतीकों का आधुनिक रचनाओ मे अत्यधिक व्यवहार हुआ है।' ये प्रतीक प्रकृति के क्षेत्र से चुने गए है जिसके कारण वे सब इन्द्रिय-गम्य होते है और अमूर्त्त भावनाओ की प्रतीति करने मे बहुत दूर तक

सहायक हुए हैं। पंत ने प्रतीकों का प्रयोग सबसे अधिक किया है। कुछेक उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(१) प्रथम केवल मोतियों को हंस जो
तरसता था, अब उसे नर सलिल में
कमलिनी के साथ क्रीड़ा की सुखद
लालसा पलपल विकल थी कर रही।

(२) आज मैं सब भाँति सुख-सम्पन्न हूँ
वेदना के इस मनोरम विपिन में;
विजन छाया मे द्रुमों की, योग-सी
विचरती है आज मेरी वेदना!
विपुल कुंजों की सघनता में छिपी
ऊँघती है नींद-सी मेरी स्पृहा;
ललित लतिका के विकम्पित अधर में
काँपती है आज मेरी कल्पना।

दूसरे उदाहरण के सम्बन्ध मे शान्तिप्रिय द्विवेदी ने लिखा है कि 'विजनछाया' मे कवि की वनवासिनी योगिनी-सी वेदना की तितिक्षा है, "विपुल कुंजो की सघनता' मे घनीभूत आकांक्षा है, 'लतिका' के विकम्पित अधर मे 'प्रेम की स्वप्निल प्रतीक्षा' है। इन विरोधी वृत्तियों मे ही प्रेम का व्यक्तित्व सुसंघटित है। उसमे मनोयोग भी है, मनोरथ भी। प्रकृति के प्रतीकों से कवि ने अमूर्त्त मनोवृत्तियों को बड़ी सजीवता से दृग्गोचर कर दिया है।' (ज्योतिविहग)

'काव्य के प्रतीकों के विषय मे एक बात आवश्यक है। नवीनता और प्रभाव के लिए नये-नये प्रतीकों की उद्भावना अत्यन्त अपेक्षित है, नहीं तो ये प्रतीक रूढ़िगत होकर प्रभावहीन हो जाते हैं। नवीन विधान के अभाव मे हिन्दी की आधुनिक रहस्यवादी कविता के हृत्तंत्री, वीणा, मूक वेदना, मौन-आवाहन आदि प्रतीक रूढ़ और प्रभावहीन

हो गये हैं। फारसी कविता के साकी-प्याला के समान ही अब इनमे कोई प्रभाव नहीं है।'

यह ठीक है कि पंत को काव्य-प्रेरणा प्रकृति से मिली है। इसीलिए उन्होंने प्रकृति का अकन विशेष रूप से किया है, पर वह प्रकृति मानव-भावो की अभिव्यक्ति के साधन-मात्र हैं। प्रकृति-

उपसंहार

प्रेम कवि के सस्कारो मे समाविष्ट है। प्रकृति के प्रति कवि का दृष्टिकोण अत्यन्त स्वस्थ एवं नैसर्गिक है। कवि के लिए प्रकृति जड नही, प्रत्युत एक सचेतन सत्ता है। पत की लेखनी से प्रसूत प्रकृति के चित्र सजीव और स्वाभाविक है तथा साथ-ही-साथ संश्लिष्ट भी। 'नौका-विहार', 'एकतारा' आदि कविताएँ अत्यन्त सश्लिष्ट एवं कलात्मक है। पंत की प्रकृति स्थिर (Static) नही, वरन् गत्यात्मक है। गत्यात्मक वर्णन मे पंत की कला अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है। 'पल्लव' तक पंत प्रकृति के कवि रहे, 'गुंजन' मे मानव-जीवन के गायक बने; पर प्रकृति को नहीं त्यागा और बाद की रचनाओ मे वे मानव के पूर्ण गायक बन गये। पंत की प्रकृति सर्वदा कोमल रही है, हाँ सिर्फ एक कविता को छोडकर और वह है 'परिवर्त्तन'। इस कविता मे प्रकृति का भीषण रूप अंकित है। लेकिन कवि ने इस रूप के अकन से अपने-आपको बचाया है। प्रकृति से कवि का साहचर्य टूटता चला जा रहा है और मानव से संबध जुटता जा रहा है।



'ग्रन्थि' का काव्य-सौन्दर्य

मानव एक चैतन्य प्राणी है और उसका स्वाभाविक गुण है आत्म-प्रकाशन एवं विचार-विनिमय। जब उसके हृदय-सागर में भावों की लहरियाँ, कल्पनाओं और अनुभूतियों का आरोह-अवरोह होता है तब उन्हें वह भाषा का परिधान पहनाकर सबके सामने प्रस्तुत करता है। सुतरां भाव-प्रकाशन में उसका आत्म-सुख निहित रहता है, साथ ही जन-सेवा और साहित्य-सेवा। यह जो आकांक्षा रहती है उसको सफल बनाने के लिए वह सतत-प्रयत्नशील रहता है। जब वह व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के विषम वातावरण से क्षुब्ध हो उठता है तब उसका अंतःकरण आलोड़ित हो उठता है जिसके फलस्वरूप वह उसकी अभिव्यक्ति चाहता है। भाषा-शैली की सशक्तता के हेतु उसके भाव अन्तःकरण से प्रस्फुटित होते हैं। पंत एक संवेदनशील मानव होने के साथ-साथ कवि हैं और जब उनके हृदय में भावों का उफान अँगड़ाई लेता है तब वे उसे अभिव्यक्त करते हैं जिसमें सहायक होती है उनकी भाषा और शैली। भाषा वह साधन है जिसके द्वारा कवि अपने हृदयगत भावों को प्रकाशित करता है। यही कारण है कि भाषा की शक्ति अपरिमित है। और शैली वह अभिव्यंजना-पद्धति है जिसके द्वारा कोई कविता आकर्षक, मोहक, रमणीय और प्रभावोत्पादक हो जाती है। शैली के अन्तर्गत अलंकार, रीति, ध्वनि, शब्द-शक्ति, वृत्ति आदि आते हैं। इनमें कुछ का सम्बन्ध शब्द से है, कुछ का अर्थ से और कुछ का दोनों से। इसीलिए शब्द और अर्थ का सम्बन्ध अविच्छेद्य है। सच पूछा जाय तो भावों के प्रत्यक्षीकरण का एक सर्वश्रेष्ठ साधन भाषा ही है। भाषा भावों का

भाव और भाषा-शैली

आभूषण है जिसके अभाव में रस का परिपाक सुंदर ढंग से नही हो सकता है। भावों का रूप-विधान इसी के द्वारा होता है। इसी के द्वारा कलाकार की सूक्ष्म ग्राहिणी शक्ति का यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है। जिस कलाकार की यह शक्ति जितनी ही परिष्कृत एव परिमार्जित होगी उतनी ही उसके भावों के 'अपीलिंग' (Appealing) मे क्षमता होगी। उसके एक-एक शब्द में आकार होगा जो भावों की एक सहज प्रतिमा पाठक की धुंधली आँखों के समक्ष खड़ा कर देगा—इसी के आश्रयण से कवि की प्रतिभा, अनुभूति और पर्यवेक्षण-शक्ति का अंदाज लग जाता है। उसकी लेखनी चित्रकार की तूलिका है जो भावों के आवेग में उसे एक आकार प्रदान कर देती है। इस कर्म में सफल होने के लिए शब्द-चयन और व्याकरण-ज्ञान का होना आवश्यक है। इस दृष्टि से 'शैली उस कलापूर्ण साधन का नाम है जो रमणीय, आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक रूप से रचना के समस्त तत्वो की अभिव्यक्ति मे अभिनव तथा उचित शक्ति का संचार करता है।'

ब्रज-भाषा का स्थान खड़ी-बोली को मिला

हिन्दी के प्राचीन कवियो ने ब्रजभाषा को ही काव्य-भाषा के पद पर प्रतिष्ठित कराया, क्योंकि उसमें लोच-लचक थी; लेकिन बाद मे अनेक कवियो ने उसके शब्दों के रूप को विकृत एवं विकलांग कर दिया। ऐसे कवियों ने शब्दो के माध्यम से अपने मन और आश्रितो के हृदय को नचाया, पर कुछ ऐसे कवि शेष रहे जिन्होने उसके रूप को भावानुकूल बनाये रखा; पर समय ने उसे काव्य-भाषा होने के अनुकूल न रहने दिया। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ होते ही खड़ी बोली ने उसका गला दबाना शुरू कर दिया। खड़ी बोली अबतक बोल-चाल की भाषा थी और काव्य की भाषा थी ब्रजभाषा। यो तो उन्नीसवी शताब्दी मे ही खड़ी बोली गद्य की भाषा हो गई थी, लेकिन उसमे शब्दो का बहुत अभाव था; क्योंकि उस समय गद्य मे भी साहित्यिक गद्य अत्यन्त अल्पमात्रा मे लिखा गया था। ब्रजभाषा का

शब्द-भण्डार अत्यन्त सीमित था जिसे शृंगारी-कवियो ने गंदा कर दिया था। बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक मे लिखने-बोलने की भाषा तथा कविता की भाषा भिन्न थी, जो साहित्यिको को अस्वाभाविक जँचा। भारतवर्ष की अन्य भाषाओं मे ऐसी बात नही थी जिससे प्रेरित होकर कुछ सहृदय कलावंतो ने खडी बोली मे काव्य-रचना आरंभ कर दी। 'युग का प्रभाव पडा। पहले उसमे इतिवृत्तात्मक कविताओ की भरमार रही, पर बीस-पचीस वर्षों के भीतर वह सज-सँवर कर ऐसी हृदयाकर्षक हो गयी कि अब व्रजभाषा फूटी आँखों भी न सुहाती।' वास्तव मे यह देन छायावाद-युग की है। इसमे प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी और आचार्य रामचंद्र शुक्ल का बहुत बडा हाथ रहा। इन लोगो के प्रयास के कारण भाषा मे ऐसी विलक्षण शक्ति आ गई कि वह सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भावो को आत्मसात् कर सकती है। यो तो खड़ी बोली का आन्दोलन कब ही आरम्भ पा चुका था और गुप्तजी-जैसे प्रतिनिधि कवि इसका रूप स्थिर कर चुके थे, पर सुमित्रानन्दन पंत ने खडी बोली के स्थिर रूप को सुकुमारता के साँचे मे ढाल दिया है। 'पल्लव' के 'प्रवेश' मे पंत ने 'खड़ी बोली' की ताईद करते हुए लिखा है—'अब व्रजभाषा और खडी बोली के बीच जीवन-संग्राम का युग बीत गया। हिन्दी ने अब तुतलाना छोड दिया, वह प्रिय कहने लगी है। उसका किशोर कंठ फूट गया, अस्फुट अंग कट-छट गये।...मुझे तो उस तीन-चार सौ वर्षों की वृद्धा (व्रजभाषा) के शब्द बिलकुल रक्त-मासहीन लगते है, जैसे भारती की वीणा की झंकारे बीमार पड गयी हों, उसके उपवन के लहलहे फूल मुरझा गये हो। खड़ी बोली आगे की स्वर्णाशा है, उसकी बाल कला मे भावी की लोकोज्ज्वल पूर्णिमा छिपी है। वह हमारे भविष्याकाश मे स्वर्ग-गंगा है। यह समस्त भारत की हृत्कंपन है।' और इसी 'पल्लव' के 'प्रवेश' मे पत ने आगे चलकर घोषित किया कि 'हमे भाषा नही, राष्ट्रभाषा की आवश्यकता है; पुस्तको की नही, मनुष्यो की भाषा, जिसमे हम हँसते-रोते, खेलते-

कूदते, लड़ते,-गले मिलते, साँस लेते और रहते हैं, जो हमारे देश की मानसिक दशा का मुख दिखलाने के लिए आदर्श हो सके, जो कालानिल के ऊँच-नीच, ऋजु-कुंचित कोमल-कठोर घात-प्रतिघातो की ताल पर विशाल समुद्र की तरह शत-शत स्पष्ट स्वरूपो मे तरगित-कल्लोलित हो, आलोड़ित-विलोड़ित हो, हँसती गरजती, संकुचित-प्रसारित होती, हमारे हर्ष-रुदन, विजय-पराभव, चीत्कार-किलकार, संधि-संग्राम को प्रतिध्वनित कर सके, उसमे स्वर भर सके। यह अत्यन्त हास्यजनक तथा लज्जास्पद है कि हम सोचे एक स्वर मे, प्रकट करे दूसरे स्वर मे। हमारे मन की वाणी न हो; हमारे गद्य का कोष भिन्न, पद्य का भिन्न हो; हमारी आत्मा के सा रे ग म पृथक् हो, वाद्य यत्र के पृथक्; हमारी भाव-तंत्री और शब्द-तंत्री के स्वरो मे मेल न हो। मूर्धन्य ष की तरह हमारे साहित्य का हृदय, देश की आत्मा, एक कृत्रिम दीवार देकर दो भागों मे बाँट दी जाय।' इसी व्रत को अपने साथ संजोये पंत हिन्दी-कविता-मंच पर अवतीर्ण हुए। उन्होने अपने जिस कथन को लिखा है, उसका पालन किया है और प्रचार भी। पंत का अध्ययन सभी दृष्टि से विस्तृत और व्यापक रहा है जिसका प्रभाव उनपर विशेष रूप से पड़ा है। वे शेली, कीट्स, बायरन, वर्डस्वर्थ, रवीन्द्र, अरविंद, मार्क्स आदि के प्रभाव को 'आधुनिक कवि' के 'पर्य्यालोचन' मे स्वीकार करते है। भाषा के संबंध मे पंत का जो विचार है वह अत्यन्त ही सुलझा हुआ है।

छायावादी पंत भावो की सम्यक् अभिव्यक्ति की कला से पूरी तरह परिचित हैं। उन्होने भावो की उच्चता, पूर्णता एव सुन्दरता के अनुरूप ही भाषा-निर्माण किया है। उन्होने भाषा को बोधगम्य, चित्रमय एव सस्वर बनाने का सतत प्रयास किया है। फलतः उनके काव्य की हृदयहारिता अधिक तीव्र हो गई है। काव्य-भाषा के सम्बन्ध मे पंतजी ने लिखा है कि 'भाषा संसार का नादमय चित्र है, ध्वनिमय स्वरूप है। यह विश्व की हृत्तंत्री का

पंत की भाषा

झंकार है, जिसके स्वर मे वह अभिव्यक्ति पाता है। विश्व की सभ्यता के विकास तथा ह्रास के साथ वाणी का भी युगपत् विकास तथा ह्रास होता है। भिन्न-भिन्न भाषाओ की विशेषताएँ भिन्न-भिन्न जातियों तथा देशों की सभ्यता की विशेषताएँ है। संस्कृत की देव-वीणा मे जो आध्यात्मिक संगीत की परिपूर्णता है वह संसार की अन्य शब्द-तंत्रियो मे नही; और पाश्चात्य साहित्य के विशद यत्रालय मे जो विज्ञान के कल-पुर्जों की विचित्रता, बारीकी तथा सजधज है, वह हमारे भारती-भवन मे नही।'

द्विवेदी-युग के कवियो ने शब्दों का भण्डार संस्कृत के अक्षय कोश से लिया और पंत ने भी भावनाओं एवं विचारों की सफल व्यंजना के लिए सस्कृत के अक्षय शब्द-भण्डार की शरण ली, और उसमे 'सस्कृत की देव-वीणा' का संगीत भी भरा। वस्तुतः देखा जाय तो हम पाते है कि खडी बोली की शब्द-तंत्री मे सगीत की अवतारणा करने का श्रेय पंत को ही है। 'ग्रन्थि' मे पंत द्वारा विशुद्ध तत्सम भाषा मे लिखी गई पंक्तियों मे कोमल कातता मिलती है, यथा—

कोमल-कांत तत्समता

> वह मधुर मधुमास था, जब गंध से
> सुग्ध होकर झूमते थे मधुप दल;
> रसिक पिक से सरस तरुण रसाल थे
> अवनि के सुख बढ़ रहे थे दिवस-से।

पंतजी द्वारा सिर्फ संस्कृत शब्दो का ही प्रयोग नहीं हुआ है, वरन् उनकी कविताओं मे संस्कृत की ज्यो-की-त्यो पदावलियाँ देखने को मिलती है, जैसे---'एकोहं बहु स्याम'; 'पत्रं-पुष्पम्'; 'नानृतं जयति'; 'अभय भवितव्यते'; 'सत्यं मा भैः'; 'जननि जन्म-भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' आदि। इस प्रकार की पदावलियों का प्रयोग पंत ने धार्मिक वातावरण निर्माण करने के फलस्वरूप किया है। ये तो कवि की अध्ययनशीलता के परिचायक है।

संस्कृत पदावलियों का प्रयोग

पंत पर संस्कृत-शैली का विशेष प्रभाव पड़ा है। इसीलिए इनकी कविताओं मे तत्सम शब्दों का आधिक्य है और पंक्ति-पंक्ति मे समास

अप्रचलित शब्दों का प्रयोग

बिछे हुए हैं। लेकिन कहीं-कहीं अप्रचलित शब्दो का प्रयोग मिलता है जिसके हेतु उसके अर्थों को हृदयगम करने मे सर खपाना पड़ता है। इस प्रकार के अप्रचलित शब्द हैं---स्वरित, निःस्वन, काम्य, उपकृति, दयानिल, निराश्रिति, कौश, कर्णमुक्ता, मार्जार-बाला, मृगेक्षिणी, वयस्या, सुभ्रुवो, गयंद, संयाम, प्राग्वर्ण, विनीरव, स्वमातुल, स्फीति, जृम्भा, उपल, सौख्य आदि।

पंत कोमल वृत्ति के कवि है और अपनी कविता मे कोमलता की

ब्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग

व्यंजना के लिए उन्होने ब्रजभाषा के शब्दों का भी प्रयोग किया है। सुन्दर शब्द-मैत्री के लिए पंत ने ब्रजभाषा के शब्दों का व्यवहार किया है जिससे उनकी श्रुति-सुखदायकता बढ़ गयी है। जैसे---

(१) एक बार बिंधे हृदय को बाँध कर।
(२) उछलती थी, फिर दुबक कर ताकती।
(३) कमल पर जो चारु दो खंजन, प्रथम।
(४) लोचनों को निज सुरा की कांति से।
(५) हरित प्रिय छोटे पगों से जगत की।
(६) अति अजान खिंचाव से सौन्दर्य के।
(७) नित नई मिति-सी, मनोरम रूप सी।
(८) आँसुओं का खेल भाता है तुम्हें।

यहाँ पर यह बतला देना आवश्यक है कि 'ग्रन्थि का लेखनकाल वही है जब कवि मध्यकाल और द्विवेदी-युग की कविता का अध्ययन कर रहा था। ग्रन्थि मे इन युगों का यत्किंचित् प्रभाव किन्हीं पंक्तियो मे देखा जा सकता है। रघुवश के अध्ययन से भाषा मे संस्कृत शब्दो का बाहुल्य है।' और 'ग्रन्थि' मे ब्रजभाषा के शब्द भी आ गये है।
—ग्रन्थि ९—

पंत ने श्रुति-मधुरता के लिए चहुँदिशि, छोर, परस, गुंजार आदि ब्रजभाषा के शब्दों का व्यवहार किया है। सच पूछा जाय तो पंत ने ब्रजभाषा के शब्दों को नया जन्म दिया है।

भावों की व्यंजनापूर्ण अभिव्यक्ति के लिए कवि ने फारसी के शब्दों का भी साहाय्य ग्रहण किया है। इस प्रकार के शब्दों में ये हैं---नादान, चीज, कसमस, शरमाना आदि। कुछ उदाहरण देखिये---

फारसी के शब्द

(१) निठुर का मुझको भरोसा है बड़ा।
(२) भाव सारे भर दिए, ताबीज-से।
(३) चपल चोखी चोट कर अब पंख की।
(४) याद आती है मुझे अपनी कथा।
(५) एक लघु नादान हो! सुकुमार यो।
(६) बरसती हो स्वच्छ हलकी शांति में।
(७) नयन के नादान शिशु, इस विश्व में।
(८) अश्रु! दिल की गूढ़ कविता के सरल।
(९) कौन वह बिछुड़े दिलों की दुर्दशा।
(१०) पूछती है जो सितारों से सतत।

अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग तो कवि ने सिर्फ 'ग्राम्या' में ही किया है, पर उन्होंने अंग्रेजी के साँचे में कहीं संस्कृत प्रत्यय लगाकर, कहीं स्वतंत्र रूप से कुछ सुन्दर ढंग गढ़े हैं, कहीं अंग्रेजी शब्दों से रूपांतरित और उनके आधार पर शब्द निर्मित किये हैं। इस प्रकार कवि ने अपनी सरलता और भाषा-कला-विज्ञता का एक साथ परिचय दिया है। पंत द्वारा हमें अंग्रेजी-भाषा-कोष से कई अच्छी प्रोक्तियाँ मिली हैं---

अंग्रेजी ढाँचे में कुछ शब्द

(क) बाल रजनी-सी अलक थी डोलती
भ्रमित हो शशि के वदन के बीच में,

अचल रेखांकित कभी थी कर रही,
प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य में।

—तीसरे चरण में 'रेखाकित' शब्द underlined का अनुवाद है।

(ख) सजनि ! उनकी खोजती लघु ज्योति में।

—'लघु ज्योति' dim light का अनुवाद है।

(ग) तरुण अनुभव मे तुले स्वर में उसे।

—इसमे तुले स्वर balanced voice का रूपातर है।

(घ) स्वर्ण-छवि का भार रहता है छिपा।

—इसमें 'स्वर्ण-छवि' शब्द golden beauty से बने है।

(ङ) अति अजान खिंचाव से सौन्दर्य के।

—'अजान' innocent का अनुवाद है।

पत देशज शब्दों के प्रभाव एवं उसके मनोविज्ञान से पूर्णतया परिचित हैं और उनके प्रयोग मे काफी सतर्क हैं। देशज शब्द हिन्दी भाषा की आत्मा है। देशज शब्दो की सरसता, उपयोगिता एवं स्वाभाविकता को देखकर कवि ने उनका प्रयोग किया है। वे शब्द है—ऐंचीला, खैंच, खोंस, बगिया, खुरच, ताकती, दुहरी, निठुर, छाजन, अबोध, अम्बियाँ, चित्तियो आदि। एक उदाहरण देखिये—

देशज शब्द

पेटिका दुहरी, पिता के यत्न की

—इसमें 'दुहरी' अत्यन्त सुष्ठु एवं स्थानापन्न है।

पंत वर्ण-विन्यास-कला मे निपुण हैं; क्योकि इससे काव्य मे कोमलता, माधुर्य और रस छलक पडता है। वर्ण-विन्यास का तात्पर्य यह है कि काव्य रचना मे ऐसे शब्द हो जिनमे सुन्दर वर्णो का समावेश हो; यथा—

वर्ण-विन्यास

प्रणय की पतली अंगुलियाँ क्यो किसी
गान से विधि ने गढ़ी ? जो हृदय की

याद आते ही विकल संगीत में
बदल देती हैं भुलाकर मुग्ध कर ।

---ऐसी मधुर कोमल-कांत-पदावलि की योजना ही वर्ण-विन्यास की कला है। पन्त की भाषा में कोमल वर्णों की प्रधानता है।

सुवर्ण-विन्यास से नाद-सौन्दर्य

पंत ने अपनी कविताओं में कुछ ऐसे वर्णात्मक शब्दों की योजना की है जिसके हेतु भावों की अभिव्यक्ति में कवि को काफी बल मिला है। कविता में शब्दों का बंध ऐसा तैयार किया गया है कि भावों का एक नादमय चित्र खड़ा हो जाता है। शब्दों से एक ऐसी झंकार निकलती है जिससे एक चित्र उपस्थित हो जाता है और साथ-ही-साथ एक गंभीर गर्जन भी सुनाई पड़ता है—

शैवलिनि ! जाओ, मिलो तुम सिंधु से
अनिल ! आलिंगन करो तुम गगन को ।
चंद्रिके ! चूमो तरंगों के अधर
उडुगणों ! गाओ, पवन-वीणा बजा ।

शब्द-निर्माण-कला में पंत अत्यन्त निपुण हैं और उनके समक्ष पूर्ववर्ती कवियों के शब्द पूँजी के रूप में थे। पंत ने उन्हें विकास-

पंत द्वारा शब्द-निर्माण

पथ पर ले जाने का कार्य सम्पन्न किया। उनके सामने द्विवेदीयुगीन कवियों का भाषा-सौष्ठव था जिसमें पंत ने कई प्रकार के नवीन परिवर्तन किये। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

निराश्रय	से	निराश्रिति ।
पुलक	से	पुलकित ।
स्वप्न	से	स्वप्निल ।
अल्प	से	अल्पता, अल्पताएँ ।
मृदु	से	मृदुलता ।
तरुण	से	तरुणतम, तरुणता ।

स्वर्ण	से	स्वर्णिम, स्वर्णिल, स्वर्णमय।
मंगल	से	मंगलमयी।
थपथपी	से	थुपथुपी।
अवसान	से	अवसित।
चित्र	से	चित्रिता।
नयन	से	नयनता।
प्रखर	से	प्रखरता।
सौरभ	से	सौरभवाह।
लालिमा	से	लालिमामय।
उपा	से	उपामय।
स्वर्ग	से	स्वर्गीय।
मूक	से	मूकता।
अपना	से	अपनाव।
उपकार	से	उपकारिणी, उपकृति।
रुचि	से	रुचिमान, रुचिरतर।
पुलक	से	पुलकावलि।

—इस प्रकार के परिवर्तन पंत द्वारा कई स्थलों पर हुए हैं।

शब्द-प्रयोग

कविता की भापा में शब्दो का व्यवहार दो रूपों मे हुआ करता है। एक रूप है समास-युक्त और दूसरा समासहीन। समास-युक्त भापा संस्कृत काव्य के लिए अत्यन्त उपयुक्त है; लेकिन हिन्दी-काव्य के लिए यह शैली हृदयग्राहिणी नहीं है। समासहीन भापा से काव्य की स्वाभाविकता नही नष्ट हो पाती है। भावों को मूर्त्त आकार प्रदान करने के लिए पंत ने ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जो नव-निर्माण-स्वरूप ही हुए है। इस प्रकार के शब्द अत्यन्त सुन्दर, मार्मिक एवं हृदय मे घर बना लेने वाले सिद्ध होते है, जैसे --

(क) अरी शैलबाले (निर्झरी) नादान

(ख) विटपबालिका (चिड़िया) पुलकित गान,

(ग) नयनों के शिशु (आँसू) नादान।

—सच पूछा जाय तो हम कहेंगे कि पंत को शब्द-निर्माण-कला में कमाल हासिल है, जिनकी समता हिंदी का कोई कवि नहीं कर सकता। कहीं-कहीं पंत ने यति, लय, भाव और सुषमा के नाम पर शब्दों का अंग-भंग किया है। इसे हम उनकी निरंकुशता कह सकते हैं। कुछ उदाहरण देखिये—

शब्दों का अंग-भंग

(क) हास औ' परिहास निरता, डोलिना।

(ख) मौन औ' अनिमेष निर्जन पुष्प-से।

(ग) उमड़ पड़ा पावस परिप्रोत।

(घ) वह है वह नहीं अनिर्वच।

इन संदर्भों में कवि ने हरसिंगार के स्थान पर 'सिंगार' रखना अच्छा समझा है, वास्तव में इस प्रकार के अंगभंग से अर्थबोध में कठिनता उत्पन्न होती है। यह स्वीकार किया जा सकता है कि खराद पर ढाले गए शब्द कहीं-कहीं भावोत्कर्षक सिद्ध हुए हैं, पर सभी स्थलों पर नहीं।

रसास्वाद में बाधा

पंत ने कुछ ऐसे शब्दों का निर्माण किया है और उनका प्रयोग कविता की रँगीली पंक्तियों में किया है। वस्तुतः वे निर्मित शब्द अर्थबोध में बाधा डालते हैं और साथ-ही-साथ रसास्वादन में कठिनाई होती है—

(क) तम के सुन्दरतम रहस्य (तारे)

(ख) इन्द्रजाल जननी (रात)

भावानुरूप भाषा

भाषा भाव के अनुरूप होनी चाहिये। इसके अभाव में कविता आनन्दहीन हो जाती है। जहाँ भाव की व्यंजना होती है, वहाँ भाषा का सौन्दर्य भी अपेक्षित है। काव्य-भाषा भाव की अनुगामिनी तो है ही, मनोहारिणी भी है, यथा—

विरह !—अहह, कराहते इस शब्द को !

—यह पंक्ति पाठकों के मानस-पटल पर एक अमिट प्रभाव छोड़ जाती है। कभी-कभी भाषा ऐसी प्रयुक्त होती है कि वह भाव को ऊपर उठा देती है तथा भावों में तीव्रता ला देती है। सच तो यह है कि पंत शब्द-चयन-कला में कुशल हैं: क्योंकि शब्दों के संबंध में उनका अध्ययन पर्याप्त है।[1]

शब्द का विचित्र प्रयोग

'पंतजी ने सभी प्रतिभाशालियों की भाँति कुछ शब्दों का विचित्र प्रयोग किया है। मनोज शब्द रूढ़ है जिसका अर्थ कामदेव ही है, परन्तु कवि ने 'मन' से ('शरीर' से विभिन्नता दिखाने के लिए) उत्पन्न, व्युत्पत्ति-अर्थ में ही, उसका प्रयोग करते हुए बापू के लिए फिट कर दिया है—'तुम आत्मा के मन के मनोज'। 'अछूत' का प्रयोग भी ऐसा है—छू अमृत स्पर्श से हे अछूत !' एक-आध स्थान पर पंत ने किसी प्रचलित शब्द के अनुसार अपने शब्द बना लिये हैं—'बिन्दुओं की छनती छनकार।' संक्षेप में शब्द और अर्थ में एकता, चित्रोपमता एवं व्यंजकता

---

१ प्रत्येक शब्द एक संकेतमात्र, इस विश्व-व्यापी संगीत की अस्फुट झंकार-मात्र है। जिस प्रकार समग्र पदार्थ एक दूसरे पर अवलम्बित हैं, ऋणानुबंध है, उसी प्रकार शब्द भी; ये सब एक ही विराट् परिवार के प्राणी हैं, इनका आपस का संबंध सहानुभूति, अनुराग-विराग जान लेना, कहाँ कब एक साड़ी का छोर उड़कर दूसरे का हृदय रोमांचित कर देता, कैसे एक की ईर्ष्या अथवा क्रोध, दूसरे का विनाश करता, कैसे फिर दूसरा बदल लेता, कैसे ये मले लगते, बिछुड़ते; कैसे जन्मोत्सव मनाते तथा एक दूसरे की मृत्यु से शोकाकुल होते,—इनकी पारस्परिक प्रीति-मैत्री, शत्रुता तथा वैमनस्य का पता लगा लेना क्या आसान है ? प्रत्येक शब्द एक-एक कविता है; लच्च और मल-द्वीप की तरह कविता भी अपने बनाने वाले शब्दों की कविता को खा-खाकर बनती है।'—पंत, पल्लव की भूमिका, पृ० १८

लाने के लिए कवि ने सर्वत्र ही सफल प्रयत्न किया है।[२]

पंत ने संस्कृत और हिंदी-कोष के ध्वन्यर्थ-व्यंजक (Onomato-poetic) शब्दों को खोज निकाला है जिसके फलस्वरूप उन्होंने अपनी कविताओं में स्तंभित, उत्ताल तरंग, गुंजन, प्रकम्पन, स्पंदन, अट्टहास, झूम-झूम, झर-झर, घर्घर-नाद, झंकार, निःश्वास, मुखरित, कंपन, धूमिल, प्रशान्त, उच्छृंखल, रोर, हिलोर, उल्लास, चीत्कार, सनसन, आह, टलमल, गर्जन, चीत्कार, गरजना, गुनगुन, क्रंदन, कलकल, छलछल आदि का प्रयोग किया है जिससे काव्य में संगीत की वृद्धि होती है--

ध्वन्यर्थ-व्यंजक शब्दों का प्रयोग

शैवलिनि, जाओ, मिलो तुम सिंधु से,
अनिल ! आलिंगन करो तुम गगन को।

पंत की भाषा की शक्ति चित्रांकन में है। उनकी भाषा कुछ शब्दों के योग से एक सजीव चित्र उपस्थित कर देने की क्षमता रखती है। पंत ने स्वयं लिखा है कि 'कविता के लिए चित्र-भाषा की आवश्यकता पड़ती है। उसके शब्द सस्वर होने चाहिए जो बोलते हो, सेब की तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर छलक पड़े, जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सके, जो झंकार में चित्र और चित्र में झंकार हो, जिनका भाव-संगीत विद्युत् धारा की भाँति रोम-रोम में प्रवाहित हो सके।' ये चित्र कई प्रकार के होते हैं। संध्या का एक चित्र लीजिये—

भाषा की चित्रण-शक्ति

रुचिरतर निज कनक किरणों को तपन
चरम गिरि को खींचता था कृपण-सा
अरुण आभा में रंगा था वह पतन,
रजकणों-सी वासनाओं से विपुल।

---

२ डा० नगेन्द्र, एम० ए०, डी० लिट्०

इस सम्बन्ध में आलोचक विश्वम्भर 'मानव' ने लिखा है कि पंत जी चित्रों में सोचते हैं। यह बात थोड़ी बहुत वीणा में भी पाई जाती है; पर ग्रन्थि में तो बहुत बढ़ गई है। 'ग्रन्थि' में थोड़े-थोड़े अवकाश के उपरान्त कुशल तूलिका से अंकित चित्रों की भरमार है। नीचे के कुछ चित्र देखिए—

(१) मंजु-छाया के विपिन में पूर्णिमा
सजल पत्रों से टपकती है जहाँ,
विचरती हो वेश प्रतिपल बदल कर
सुघर मोती-से पदों से ओस के।

(२) तूल-सी मार्जारबाला सामने
निरत थी, निज बाल-क्रीड़ा में कभी
उछलती थी, फिर दुबक कर ताकती
घूमती थी साथ फिर फिर पूँछ के।

(२) शीश रख मेरा सुकोमल-जाँघ पर
शशि-कला-सी एक बाला व्यग्र हो
देखती थी म्लान-मुख मेरा अचल,
सदय, भीरु, अधीर, चिंतित दृष्टि से।

(४) स्वप्न के सस्मित अधर पर, नींद में
एक बार किसी अपरिचित-साँस का
अर्ध-चुंबन छोड़, मैं झट चौंक कर
जग पड़ी हूँ अनिल-पीड़ित लहर-सी।

'पहले छन्द में यद्यपि नियति का वर्णन है; तथापि उससे एक ऐसा चित्र आँखों के सामने खड़ा होता है कि कहीं एक निर्जन वन है जहाँ वृक्षों की कोमल छाया पड़ रही है। वहीं पत्रों के अन्तराल से हल्की चाँदनी छन कर पृथ्वी पर बिछ गई है। भीगे पत्रों से जो ओस के कण अभी गिरे हैं वे उस चाँदनी में हिलते और झलमलाते प्रतीत होते

हैं। इस वातावरण में एक छाया-मूर्ति बार-बार इधर से उधर निकल जाती है। अत्यन्त स्पष्ट होते हुए भी यह चित्र स्वप्न की सृष्टि जैसा प्रतीत होता है। इस चित्र का अंकन वैसे कोई चित्रकार भी कर सकता था; पर छन्द की अंतिम दो पक्तियों में जो गति को बाँधा गया है, वह उसकी शक्ति से बाहर की बात थी। दूसरे चित्र में गति को और भी सजीवता प्रदान की गई है। नायिका वातायन के निकट बैठ कर प्रभात की लालिमा में उद्यान का सौन्दर्य निरख रही है। वहीं पास में उसकी प्रिय बिल्ली बैठी है। तूल (रुई) सी कहते ही उसके वर्ण और कोमलता एवं चिकनाहट का भान होता है। 'सामने' शब्द का उच्चारण करते ही लगता है जैसे वह हमारी आँखों के सामने ही आकर खड़ी हो गई हो। यही दशा 'उछलती' 'दुबककर ताकती' आदि की है। इन शब्दों और वाक्यों से बिल्ली का कभी सहसा उछलना कभी अपने में सिमट कर ताकना और कभी पूँछ उठा कर चक्कर काटना आदि प्रत्यक्ष हो जाते है। शब्दों के उच्चारण भाव से अर्थ की ऐसी प्रत्यक्ष व्यजना कराना पंत जी की ही कला का काम हैं। यह प्रकृति और प्रकृति के अधिक चेतन पशु-जगत की बात हुई। तीसरे चित्र में नर-नारी का चित्रण हम पाते हैं—शशि कला-सी बाला, म्लान-मुख-मूर्च्छित एक युवक, सुकोमल जाँघ। इस चित्रसे हमारा परिचय कई बार हो चुका है। बाला अधीर है; अतः संभव है उसे इस बात का ध्यान न रहा हो कि उसने एक अपरिचित को कहीं लिटा रखा है। साधारण स्थिति में शायद ही कोई बाला किसी को इस प्रकार लिटा सके; पर सुकोमल जाँघ कहते ही पाठक को तो एक प्रकार की गुदगुदी का अनुभव होता ही है। सदय, अधीर, चिंतित आदि शब्दों से यद्यपि दृष्टि का ही चित्रण हुआ है, पर इस दृष्टि में हृदय की पूरी हलचल अंकित हो गई है। चौथे चित्र में तो प्रणय-जीवन से संबंधित संयोग का एक व्यापार ही अपनी पूर्ण मधुरता में सजीव हो उठा है। एक रमणी स्वप्न देख रही है। देख रही है कि

स्वप्न में वह लेटी हुई है, एक अपरिचित प्राणी (झूठ बोलती है, अवश्य कभी परिचित रहा होगा, न रहा होता तो स्वप्न मे देख ही न पाती, पर सुंदरियों के मुँह से झूठ भी प्यारा लगता है) उसके निकट आता है। अपने अधरों को उसके अधरों के पास लाता है वह। साँस उसकी तीव्र हो जाती है। संभव है हृदय भी धड़क रहा हो। नायिका के अधरों पर स्मिति दौड़ जाती है। युवक उसकी अनुमति समझ अधरों पर अधर रखता है कि नायिका की आँखें खुल जाती है। चेतना के आघात ने नायिका को जगा दिया, वैसे ही जैसे जल मे सोई लहर को पवन का झकोरा जगा दे। यह चित्र कितना मनोवैज्ञानिक, कितना सरल, कितना सजीव है, वर्णन करते नहीं बनता।'[3]

यहीं पर यह संकेत कर देना आवश्यक है कि काव्य भाषा को चित्र-मय बनाने के लिए लक्षणा शक्ति (जिसमें प्रतीक योजना भी है), मानवी-करण और विशेषण-विपर्यय का आश्रय ग्रहण करना पडता है।

लक्षणाशक्ति

मुख्यार्थ की बाधा या व्याघात होने पर रूढि या प्रयोजन को लेकर जिस शक्ति के द्वारा मुख्यार्थ से संबध रखने वाला अन्य अर्थ लक्षित हो उसे लक्षणा कहते हैं। एक उदाहरण लीजिये—

हाय मेरे सामने ही प्रणय का ग्रन्थिबंधन हो गया, वह नव कमल—
मधुप-सा मेरा हृदय लेकर किसी अन्य मानस का विभूषण हो गया।

—कवि का कथन है कि उसकी प्रणयिनी का परिणय दूसरे से हो गया है। इसमें 'नवकमल' शब्द प्रणयिनी के लिए आया है, जो आरोप्यमाण है, आरोप के विषय का कथन नहीं है। विषयी में विषय का अध्यवसान हो जाने के साध्यावसान है। गुण-धर्म से सादृश्य होने के कारण गौण है। ऐसे ही 'प्रणय' मे प्रेमी-युगल का अध्यवसान है।

---

२ सुमित्रानन्दन पंत, पृ० ४२४-२६।

पंत ने अपनी कविता-कामिनी को सजाने के लिए चित्रमय विशेषणों का संचय किया है। यह कविता को सुन्दर बनाने का अत्यन्त प्रिय साधन है। इनकी कविता में चित्रमय विशेषणों की सख्या पर्याप्त है—

चित्रमय विशेषण

(१) तिमिर के अज्ञात अंचल में छिपी,
झूमती है भ्रान्ति मेरी अमर-सी।

(२) तिमिर ! यह क्या विश्व का उन्माद है ?
जो छिपाता है प्रकृति के रूप को ?
या किसी की यह विनीरव आह है ?
खोजती है जो प्रलय की राह में ?

(३) वेदना ! कैसा करुण उद्गार है,
वेदना ही है अखिल ब्रह्माण्ड यह,
तुहिन में, तृण में, उपल में, लहर में,
तारकों में, व्योम में है वेदना।
वेदना ! कैसा विपद यह रूप है,
यह अँधेरे हृदय की दीपक-शिखा,
रूप की अंतिम छटा ! इस विश्व की
अगम-चरम अवधि, क्षितिज की परिधि-सी।

पंत की प्रवृत्ति मुहावरे तथा लोकोक्ति के प्रयोग की ओर नहीं है। संभवतः वे मुहावरों को बोल-चाल की वस्तु समझते है, किन्तु मुहावरे और लोकोक्ति का काव्य मे बहुत महत्त्व है। स्मिथ साहब के शब्दों मे 'मुहावरे भाषा के जीवन की स्फूर्ति है। ये उसे जीवन भर ही नहीं देते, वरन् सुन्दर भी बनाते है। मुहावरों के अभाव से वह अरुचिकर, भद्दी और अशक्त हो जाती है। इन्हे कविता की बहन समझना चाहिये, क्योंकि कविता की भाँति ये भी हमारे विचारो को जीवित सवेदना का रूप देते हैं।' पंत छायावादी कवि हैं, इसलिए इनके मुहावरो के मूल मे

मुहावरे और लोकोक्ति

अधिकतर लाक्षणिक वक्रता सन्निहित रहती है। भावों की मार्मिकता की अभिव्यक्ति सांकेतिकता के कारण मुहावरों के द्वारा अधिक होती है, लेकिन तथ्यों की सूक्ष्म व्यंजना इनके द्वारा नहीं हो सकती। पंत की भाषा में मुहावरेबाजी और कहावतबाजी नहीं के बराबर है, किन्तु जहाँ-तहाँ जो भी प्रयोग दीखते हैं, वे सुन्दर बन पड़े हैं। कुछेक उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(क) भ्रू युगल मटका चुकी हूँ सेतु-से
(ख) आँखों से मत विंधवाओ।
(ग) मैं नियति की रेख भी हूँ पढ़ चुकी।
(घ) विविध यत्नों से सुलाकर, मैं उसे
बार-बार लगा चुकी हूँ हृदय से।
(ङ) वृत्त कोरें गिन रही हो, पुनः वह।
(च) हाय! सब तुमने मिला दी धूल में।
(छ) भाग लेती, वह सरलता की कला
हर रही थी कुमुद की प्रिय कुटिलता।
(ज) करुण कोमल भेद भी हूँ पढ़ चुकी।
(झ) घाव करते हो सुमन-से हृदय में।
(ञ) तुम हृदय के घाव धोते हो सदा।
(ट) यह अनोखी रीति है क्या प्रेम की,
जो अपांगों से अधिक है दीखता,
दूर होकर और बढ़ता है तथा
वारि पीकर पूछता है घर सदा।

—इसमें 'पानी पीकर पूछनी, नाही भलो विचार' का भावपूर्ण स्वरूप अभिव्यक्त हुआ है।

बाल-रजनी-सी अलक थी डोलती
भ्रमित हो शशि के वदन के बीच में।

अचल रेखांकित कभी थी कर रही,
प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य में।

—इसमें अंग्रेजी के मुहावरों का व्यंजनापूर्ण प्रयोग हुआ है।

पंत ने अंग्रेजी ढंग पर कहीं-कहीं शब्दों का संक्षिप्त प्रयोग किया है। इसके पीछे कवि की संगीत-सौंदर्य-प्रियता कार्य करती है और कहीं-कहीं मात्रा की पूर्ति के निमित्त। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

शब्दों का संक्षिप्त प्रयोग

(क) मौन औ' अनिमेष निर्जन पुष्प-से!

(ख) वह, वह नहीं, अनिर्वच,
जग उसमें, वह जग में लय।

(ग) रेणु की साड़ी पहन, औ' तुहिन का।

(घ) प्रेम औ' आँसू के कन!
आह मेरा अक्षय धन,
अपरिमित सुन्दरता औ' मन।

यह तो विदित ही है कि काव्य के रस को उत्कृष्ट बनाने में गुण और रीति का बहुत बड़ा हाथ है। गुण वे ही हैं जो रस के धर्म हैं और जिनकी स्थिति रस के साथ अचल है। माधुर्य, ओज और प्रसाद नामक तीन गुण हैं जो रसों में प्रतीत होते हैं। पंत की कविता में तीनों गुण पाये जाते हैं।

गुण

माधुर्य गुण :

निज पलक, मेरी विकलता, साथ ही
अवनि से, उर से मृगेक्षिणि ने उठा
एक पल, निज स्नेह श्यामल दृष्टि से
स्निग्ध कर दी दृष्टि मेरी दीप-सी

ओज गुण :

शैवलिनि! जाओ, मिलो तुम सिंधु से,
अनिल! आलिंगन करो तुम गगन को।

प्रसाद गुण :

हाय! मेरे सामने ही प्रणय का
ग्रन्थि बंधन हो गया, वह नव कमल—
मधुप-सा मेरा हृदय लेकर, किसी
अन्य मानस का विभूषण हो गया।

यह तो ठीक है कि प्राचीन आचार्यों ने तीन गुण माने है, पर कुछ छायावादी कविताएँ मिलती है जिनमे इन तीनो गुणो का अभाव है, जैसे—

कँप - कँप हिलोर रह जाती रे मिलता नहीं किनारा।
बुद - बुद विलीन हो चुपके पा जाता आशय सारा।

द्विवेदीयुगीन कविता व्याकरण के नियमो पर आधारित थी, पर पत ने व्याकरण की मान्यताओ मे परिवर्तन किया है। इस संबंध मे कवि ने

व्याकरण के बधन से मुक्ति

लिखा है कि 'मैने अपनी रचनाओ मे कारणवश, जहाँ-कही व्याकरण की लोहे की कड़ियाँ तोडी है, यहाँ उसके विषय मे कुछ लिख देना उचित समझता हूँ। मुझे अर्थ के अनुसार ही शब्दो को स्त्रिलिंग-पुंलिंग मानना अधिक उपयुक्त लगता है। जो शब्द केवल अकारान्त-इकारान्त के अनुसार ही पुलिग अथवा स्त्रीलिंग हो गये है, और जिनमे लिग का अर्थ के साथ सामंजस्य नहीं मिलता, उन शब्दो का ठीक-ठीक चित्र ही ऑखो के सामने नही उतरता और कविता मे उनका प्रयोग करते समय कल्पना कुंठित-सी हो जाती है। वास्तव मे जो शब्द स्वस्थ तथा परिपूर्ण क्षणों मे बने हुए होते है उनमे भाव तथा स्वर का पूर्ण सामंजस्य मिलता है, और कविता मे ऐसे ही शब्दो की आवश्यकता भी पड़ती है। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि यदि संस्कृत का 'देवता' शब्द हिन्दी मे आकर पुंलिग न हो गया होता तो स्वयं देवता ही हिन्दी कविता के विरुद्ध हो गए होते। 'प्रभात' और प्रभात के पर्यायवाची शब्दो का चित्र मेरे सामने स्त्रीलिंग मे ही आता है, चेष्टा

करने पर भी मैं कविता में उनका प्रयोग पुलिंग में नहीं कर सकता। यथा—

"सौ-सौ साँसों में पत्रों की
उमड़ी हिम जल सस्मित भोर" के बदले
'.. उमड़ा हिम जल सस्मित भोर'—तथा
'रुधिर से फूट पड़ी रुचिमान
पल्लवों की यह सजल प्रभात' के बदले
रुधिर से फूट पड़ा रुचिमान
पल्लवों का यह सजल प्रभात'

इसी प्रकार अन्य स्थानों में भी, 'प्रभात' आदि को पुंलिंग मान लेने पर मेरे सामने प्रभात का सारा जादू, स्वर्ण, श्री, सौरभ, सुकुमारता आदि नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं, उनका चित्र ही नहीं उतरता। 'बूँद', 'कम्पन' आदि शब्दों को मैं उभय लिंगों में प्रयुक्त करता हूँ। जहाँ छोटी-सी बूँद हो वहाँ स्त्रीलिंग, जहाँ बड़ी हो वहाँ पुंलिंग; जहाँ हल्की-सी हृदय की कम्पन हो वहाँ स्त्रीलिंग—जहाँ जोर-जोर से धड़कने का भाव हो वहाँ पुंलिंग।"[४] पंत ने व्याकरण की अपेक्षा भाव को अधिक महत्त्व दिया है। लिंग-विपर्यय का कुछ उदाहरण लीजिए—

(क) संकुचित थी प्रात जो नव क्यारियाँ।
(ख) खिल उठती आँगन में अवदात
कुन्द कलियों की कोमल प्रात।
(ग) बालिका मेरी मनोरम मित्र थी।

सुतरां हम देखते हैं कि पंतजी ने डर, भोर, प्रात, गर्जन आदि का प्रयोग स्त्रीलिंग में किया है और श्वास, बात का पुंलिंग में। इस प्रकार के दोष च्युत-संस्कार कहे जाते हैं। इस दोष के अन्तर्गत वचन-दोष, सन्धि-दोष, समास-दोष और लिंग-दोष रहता है।

---

४ पल्लव का 'विज्ञापन', पृ० ख—ग

वचन दोष :

(१) ये नयन डूबे अनेकों वार हैं।

(२) देख इन्द्रधनुष अनेकों वार में।

कथितपद शब्द-दोष :

(क) इस म्लान मलिन अधरो पर
स्थिर रही न स्मित की रेखा

(ख) म्लान तम में ही कलाधर की कला।

क्रिया-दोष :

(क) खिलने लगा नवल किसलय वह

(ख) बरसाती अमृत-भरी दृष्टि

शैली की दृष्टि से

शैली की दृष्टि से पंत की कविताओ मे अनेक प्रणालियो को पाते हैं—कही मै-शैली, कही वर्णनात्मक, कही उद्बोधनात्मक और कहीं विचारात्मक आदि है। वर्णनात्मक शैली का तात्पर्य है कथात्मक प्रसंगो और दृश्यों के वर्णन से। पंत की 'वे आँखें' शीर्षक कविता इसी शैली मे लिखी गई है। यह कविता 'ग्राम्या' नामक संग्रह मे संकलित है जिसकी प्रथम पंक्ति है—'अंधकार की गुहा-सरीखी उन आँखों से डरता है मन।' वर्णनात्मक शैली मे 'ग्रन्थि' की भी रचना हुई है। उद्बोधनात्मक शैली के अन्तर्गत पत की 'भारत-माता', 'राष्ट्रगान', 'उद्बोधन' शीर्षक कविताएँ है। विचारात्मक शैली मे पंत की वे कवितायें हैं जिनमे विचारो का प्रतिपादन किया गया है। विचारात्मक शैली मे लिखित कविताओं का उदाहरण 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' मे पर्याप्त है। व्यंग्यात्मक शैली मे भी पंत ने कविताएँ लिखी है।

पंत की अलंकार योजना

आज का युग अलंकारों का युग नहीं है, क्योंकि छायावादी कवियों की दृष्टि इस ओर नहीं रही। इन कवियों ने भाव को महत्त्व प्रदान किया, न कि अलंकारों को। इन कवियों की कविताओं में अप्रस्तुत-योजना का

संघटन अधिक हुआ है। पंत की कविता में रीतिकालीन कवियों की भाँति अलंकार अस्वाभाविक नहीं उतरे हैं। पंत की कविताओं में अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा, समासोक्ति आदि अलंकारों का विधान प्रचुर मात्रा में हुआ है। पंत की 'ग्रन्थि' में कुछ अलंकारों के उदाहरणों को लीजिये—

[1] अनुप्रास (Alliteration)—जहां व्यंजनों की समता हो।

(क) वह मधुर मधुमास था, जब गंध से
मुग्ध होकर झूमते थे मधुप-दल।

(ख) तरणि के ही संग तरल तरंग से
तरणि डूबी थी हमारी ताल में। (यमक)

(ग) मधुप-बाला का मधुर मधु-मुग्ध राग।

(घ) ललित लोल उमंग-सी लावण्य की।

(ङ) नव-नव सुमनों से चुनकर धूलि सुरभि मधुरस हिमकण
मेरे उर की मृदु कलिका में भर दे कर दे विकसित मन।

(च) चपल चोखी चोट कर अब पंख की।

(छ) तरुणता की उन तरंगों में तरल।

(ज) तज कर तरल तरंगों को।

(झ) .... पूर्व को
पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था।

(ञ) लोल लहरों से कलापति पर लिखी

(ट) रसिक पिक से सरस तरुण रसाल थे।

(२) उपमा (Simile)—दो पदार्थों के उपमान-उपमेय-भाव से समान धर्म के कथन करने को उपमा कहते हैं।

(क) सान्ध्य-निःस्वन-से गहन - जल - गर्भ मे
था हमारा विश्व तन्मय हो गया।
.... मैं झट चौंक कर
अनिल - पीड़ित लहर-सी।

(ग) कृपण से दान-सी
दैव से जब प्रेमिका मुझको मिली।
(घ) अवनि के सुख बढ़ रहे थे दिवस-से।
(ङ) .... उस दृश्य की
चारु - चर्चा ने हमारा प्रिय - समय
हर लिया उस हंसिनी के हृदय - सा
(च) जब अचानक अनिल की छवि मे पला
एक जल-कण जलद-शिशु-सा पलक पर
आ पड़ा, सुकुमारता - सा, गान - सा
चाह-सा, सुधि-सा, सगुन-सा, स्वप्न-सा
(छ) पवन के उभरे गगनमय पंख - से
परम - सुख के उस विशाल - विलास मे
शरद घन-सा लीन हो, गिर पलक-सा
भूल जावें.......................... ......
(ज) तूल - सी मार्जार - बाला सामने
निरत थी निज बाल - क्रीड़ा मे—
(झ) वह मृगी-सी चकित आँखो को फिरा
थी छिपाना चाहती अपनी दशा
(ज) कर्णमुक्ता चूम कोई गाल पर
प्रतिफलित थे ओस - बूँदो से धवल

(२) पूर्णोपमा (Complete Simile)—जहां उपमान, उपमेय, धर्म और वाचक चारो हो।

जब विमूर्च्छित नींद से मैं था जगा
(कौन जाने, किस तरह ?) पियूष सा
एक कोमल सम-व्यथित-निःश्वास था
पुनर्जीवन-सा मुझे तब दे रहा।

इसमें निःश्वास उपमेय, पीयूष उपमान, सा वाचक और [illegible]

देना साधारण धर्म है जिसके कारण पूर्णोपमा अलंकार है।

(४) मालोपमा—जहाँ एक उपमेय के अनेक उपमान कहे जायँ, वहाँ मालोपमा होती है।

(क) जब अचानक, अनिल की छवि में पल।
एक जलकण, जलद-शिशु-सा, पलक पर
आ पड़ा सुकुमारता-सा, गान-सा,
चाह-सा, सुधि सा, सगुन-सा, स्वप्न-सा

(ख) गर्व-सा गिर उच्च-निर्झर-स्रोत से
स्वप्न-सुख मेरा शिलामय-हृदय से
घोष भीषण कर रहा है वज्र-सा,
वात-सा, भू-कम्प-सा, उत्पात-सा

—इसमें स्वप्न-सुख उपमेय है, गर्व उपमान, सा वाचक और गिरना वाच्य।

(५) सहोक्ति (Connected Description)—'सह' अर्थ-बोधक शब्दों के बल से जहाँ एक ही शब्द दो अर्थों का बोधक होता है, वहाँ सहोक्ति अलंकार होता है।

निज पलक मेरी विकलता साथ ही
अवनि से उर से मृगेक्षणि ने उठा,
एक पल निज शस्य-श्यामल दृष्टि से
स्निग्ध कर दी दृष्टि मेरी दीप सी।

—यहाँ 'साथ ही' शब्द की सहायता से नायिका की पलकों का नीचे (भूमि से) और नायक की विकलता का हृदय से उठना कहा गया है। यथासंख्य अलकार के मिश्रण से इसकी चारुता और भी बढ़ गई है।

(६) काव्य लिंग (Practical Reason or Cause)—जहाँ किसी बात को सिद्ध करने के लिए उसका कारण कहा जाय वहाँ काव्य-लिंग अलंकार होता है, जैसे—

और भोले प्रेम ! क्या तुम हो बने
वेदना के विकल हाथों से ? जहाँ
झूमते गज-से विचरते हो, वहीं
आह है, उन्माद है, उत्ताप है !

—इस संदर्भ मे प्रेम का वेदना के हाथो द्वारा बना होना सिद्ध करने के लिए अंतिम पंक्ति मे कारण उक्त है। इसमे पृथक्-पृथक् पदों मे कारण उक्त है।

(७) संकर—नीर-क्षीर न्याय के समान मिले हुए अलंकारो को संकर अलंकार कहते हैं।

निज पलक मेरी विकलता साथ ही
अवनि से उर से मृगेक्षणि ने उठा
एक पल निज शस्य-श्यामल दृष्टि से
स्निग्ध कर दी दृष्टि मेरी दीप-सी।

—इसके प्रथम दो चरणो मे सहोक्ति, यथासंख्य और लुप्तोपमा का एकाश्रयानुप्रवेश है। अवनि से पलक और उर से विकलता के उठाने मे यथासंख्य, पलक और विकलता के एक साथ उठाने मे सहोक्ति और मृगेक्षणि मे लुप्तोपमा है। (एकाश्रयानुप्रवेश-संकर)

यह तो हुआ प्राच्य अलंकारो के उदाहरण। अब थोड़ा-सा पाश्चात्य अलंकारो की छटा पंत के काव्य मे देखिये—

(i) मानवीकरण (Personification)—

पर नही, तुम चपल हो, अज्ञान हो,
हृदय है; मस्तिष्क रखते हो नही।
बस बिना सोचे हृदय को छीनकर
सौंप देते हो अपरिचित हाथ में।

—इसमे मानवी कार्य के द्वारा प्रेम का मानवीकरण हुआ है।

(ii) विशेषण-विपर्यय या विशेषण-व्यत्यय—'किसी कथन को विशेष अर्थगर्भित तथा गंभीर करने के विचार से विशेषण का विपर्यय

कर दिया जाता है। अभिधा वृत्ति में विशेषण की जहाँ जगह है वहाँ से हटाकर लक्षणा के सहारे उसे दूसरी जगह बैठा देने से काव्य का सौष्ठव कभी-कभी बहुत बढ़ जाता है। भावाधिक्य की व्यंजना के लिए विशेषण-विपर्यय-अलंकार का व्यवहार बहुत सुन्दर है।' (सुधांशु) विशेषण-विपर्यय का प्रयोग पंत की कविता में अधिक पाया जाता है, एक उदाहरण देखिये—

जब विमूर्च्छित नींद से मैं था जगा
कौन जाने किस तरह ? पीयूष-सा
एक कोमल समव्यथित निःश्वास था
पुनर्जीवन-सा मुझे तब दे रहा।

—यहाँ मूर्च्छित नींद नहीं, जागनेवाला मूर्च्छित है। द्वितीय चरण में मूर्त नायिका के लिए 'समव्यथित निःश्वास' में अमूर्त का मूर्त विधान भी किया गया है।

छन्द

'ग्रन्थि' की रचना अतुकान्त छन्द में हुई है और इसका छन्द भावों की गति पर चलता है। डा० नगेन्द्र के शब्दों में—'ग्रन्थि' में आपने 'run-on-lines' का प्रयोग किया है—

और भोले प्रेम ! क्या तुम हो बने—
वेदना के विकल हाथों से ? जहाँ—
झूमते गज से विचरते हो, वहीं—
आह है, उन्माद है, उत्ताप है।

सिंहावलोकन

पंत हिन्दी के कोमल कवि हैं और छायावाद के उन्नायकों में हैं। उनकी कविता परिपूर्ण क्षणों की वाणी है जिसके हेतु उसमें भाव और भाषा का स्वरैक्य है। पंत ने भाषा के क्षेत्र में भी अपनी कलात्मक अभिरुचि का प्रदर्शन किया है। अगर पंत को हम छायावादी कविता की भाषा का सूत्रधार कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी। भाषा के संबंध में कवि की अपनी मान्यताएँ

है जिनके फलस्वरूप उन्होने हिन्दी कविता को अनेक नये शब्द दिये है। सच तो यह है कि पंत की भाषा मे धीरे-धीरे विकास होता गया है जिसके कारण भाषा-वीणा मे सुघरता, मधुरता, मूर्तिमत्ता, लाक्षणिकता, संगीतात्मकता एवं क्लिष्टता आ गई है। कवि का भाषा पर व्यापक और विस्तृत अधिकार है। अतएव सर्वत्र खड़ी-बोली के अत्यन्त शिष्ट और प्रौढ स्वरूप का दर्शन होता है। हॉ, कहीं-कही शब्द-बाहुल्य के कारण भाषा श्लथ हो गई है। एक शब्द मे हम कह सकते है कि पंत की काव्य-भाषा सौंदर्यपूर्ण एवं सुकुमार है जिसके पढने से हृदय मधुर रस से सिक्त हो उठता है।



आलोचकों की दृष्टि में 'ग्रन्थि'

'वीणा' के उपरान्त ग्रन्थि है—असफल प्रेम की ! इसमें एक छोटे से प्रेम-प्रसंग का आधार लेकर युवक कवि ने प्रेम की आनन्द भूमि में प्रवेश, फिर चिर-विषाद के गर्त्त में पतन दिखाया है। प्रसंग की कोई नई उद्‌भावना नहीं है। करुणा और

रामचन्द्र शुक्ल

सहानुभूति से प्रेम का स्वाभाविक विकास प्रदर्शित करने के लिए जो वृत्त उपन्यासों और कहानियों में प्रायः पाये जाते हैं—जैसे, डूबने से बचानेवाले, अत्याचार से रक्षा करने वाले, बंदीगृह में पड़ने या रणक्षेत्र में घायल होने पर सेवा-शुश्रूषा करने वाली के प्रति प्रेम-संचार—उन्हीं में से एक चुनकर भावों की व्यंजना के लिए रास्ता निकाला गया है। झील में नाव डूबने पर एक युवक डूब कर बेहोश होता है और आँख खुलने पर देखता है कि एक सुन्दरी युवती उसका सिर अपने जंघे पर रखे हुए उसकी ओर देख रही है। इसके उपरान्त दोनों में प्रेम-व्यापार चलता है; पर अंत में समाज के बड़े लोग इस स्वेच्छाचार को न सहन करके उस युवती का ग्रन्थि बंधन दूसरे पुरुष के साथ कर देते हैं। यही ग्रन्थि बंधन उस युवक या नायक के हृदय में एक ऐसी विषाद-ग्रन्थि डाल देता है जो कभी खुलती ही नहीं। समाज के द्वारा किस प्रकार स्वभावतः उठा हुआ प्रेम कुचल दिया जाता है, इस कहानी द्वारा कवि को यही दिखाना था। यद्यपि प्रेम का स्रोत कवि ने करुणा की गहराई से निकाला है पर आगे चलकर उसके प्रवाह में भारतीय पद्धति के अनुसार हास-विनोद की झलक भी दिखाई है। कहानी तो एक निमित्त मात्र जान पड़ती है; वास्तव में सौन्दर्य-भावना की अभिव्यक्ति और आशा, उल्लास, वेदना, स्मृति इत्यादि की अलग-अलग व्यंजना पर ही ध्यान जाता है। [हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ८३८]

ग्रन्थि एक विरह काव्य है। इसमे कवि की कल्पना और वेदना जितनी मूर्त्त और सप्राण है उतनी अन्यत्र कही भी नही। आगे 'आँसू' और 'उच्छ्वास' मे यह व्यथा जितनी छिछली हो गई है उसे देखते हुए तो इसका महत्व और भी बढ़ जाता है।… सम्पूर्ण 'ग्रन्थि' काव्य इसी प्रकार रोदन मे ही समाप्त होता है, कवि आँसू पोंछने का प्रयास भी नहीं करता। "उसे अन्त मे कोई समन्वय खोजना चाहिए था और अपनी पीडा को कोई दार्शनिक पृष्ठभूमि देनी चाहिए थी" ऐसी आदेशनाओ को मै आवश्यक नही समझता। जीवन मे सब कहीं समन्वय नही होता और न उसका होना आवश्यक ही है। यह ठीक है, पीडा को अंतिम सत्य नहीं बन जाना चाहिए, यदि ऐसा हो तो यह कवि की एक बड़ी कमी—मानसिक-स्वास्थ्य का अभाव—समझी जायगी। किन्तु पंतजी के काव्य मे यह बात नहीं है; उनकी वेदना प्रेयसी के विरह का परिणाम है और उसे प्रेयसी की ही चाह है। समन्वय खोजना ही होता या ऐसा करना अस्वाभाविक होता, यह नही कहा जा सकता। आँसू मे अन्त मे समन्वय खोजने का प्रयास है, यद्यपि मुझे संदेह है कि कवि वहाँ कोई समन्वय खोज सका है, तो भी वह मधुर है और ऐसा प्रतीत होता है, इसके बिना आँसू काव्य अधूरा रहता; किन्तु प्रश्न हो सकता है 'एक काल्पनिक सत्य मे विस्मृति ही क्या समन्वय है?' इस विषमता का स्थायी होना तो कभी भी अभीष्ट नही हो सकता, किन्तु क्या इसके पर चिन्हो के साथ जीवन स्वस्थ नही रह सकता?'

यशदेव 'शल्य'

'ग्रन्थि' की अभिव्यक्ति और भाव-प्रणाली, दोनो ही छायावादी ढग की नहीं, ये बहुत कुछ संस्कृत काव्य से प्रभावित है। आधुनिक लाक्षणिक प्रयोग तथा विशेषण-विपर्यय इत्यादि अलंकार कम ही प्रयुक्त हुए है। सस्कृत की शैली का प्रयोग यहाँ दोष नही गुण ही बन कर आया है।… अस्तु, ग्रन्थि की अनुभूति का आधार संभवतः काल्पनिक नही, यदि ऐसा हो भी, जैसा कि पंत जी कहते है, तो भी

... इतना गहरा है कि उसे कल्पना से अधिक ही समझना चाहिए। ... ऐसी कोई घटना न हुई हो, किन्तु उसकी काल्पनिक अनुभूति इतनी स्पष्ट है कि वह यथार्थ-सी प्रतीत होती है।... इनमें अनुभूति का प्रयोग जितना तीव्र और यथार्थ है उतना पंत काव्य में अन्यत्र बहुत कम ही होगा। बच्चनजी के विचार में 'पंत जी कल्पना के गायक हैं—अनुभूति के नहीं, इच्छा के गायक हैं, वासना—तीव्र इच्छा के नहीं।' बच्चनजी ने अपने इतने बड़े वक्तव्य में केवल यही बात ... कही है। किन्तु इस उद्धरण को 'ग्रन्थि' पर पूरा लागू नहीं किया जा सकता: ग्रन्थि में वे वास्तव में अनुभूति और तीव्र इच्छा के ही गायक हैं। तो भी आखिर वे पंतजी हैं, अतः ग्रन्थि के अन्तिम अंशों में दर्शन का तनाव आ गया है और अनुभूति सूख गई है। ऐसा प्रतीत होता है, अन्तिम पदों तक पहुँचते-पहुँचते पंतजी अनुभूति का ... खो बैठे और केवल कविता के आग्रह में और कुछ अपने ... को उस भावना में बिठाए रखने के लिए विकल्प करते रहे। ... अन्तिम पदों की संख्या यद्यपि अनुपात में काफी कम है तो भी अंत ... में वे काफी अरोचक हैं और प्रभाव को घटा देती हैं। इस ... के पदों के भी दो-एक उदाहरण लें—

तिमिर के अज्ञात अंचल में छिपी,
भ्रमती है भ्रान्ति मेरी भ्रमर-सी।

× × ×

तिमिर! यह क्या विश्व का उन्माद है?
जो छिपाता है प्रकृति के रूप को?
... किसी ... यह विनोदच आह है?
... हैं जो प्रलय की राह में?

... पंक्तियों में तिमिर शब्द आ जाने से आगे ... पंक्तियों में उसका ... करना प्रारंभ कर दिया गया है। ... लगभग आठ पंक्तियाँ साथ और

भी इसी वर्णन मे है। ये विशेषण ऐसे कोई असंगत तो नही, पीछे हम 'इन्दु की छवि से' इत्यादि पद मे 'उत्सुकता' के लिए भी इसी प्रकार का पद देख आये है; किन्तु इन दोनो मे एक बडा अन्तर है। उक्त पद्य मे अनुभूति का नितान्त अभाव है जबकि पीछे उद्धृत किया हुआ पद्य अनुभूति से सप्राण है। वेदना के लिए ही अन्त मे भी कुछ पद्य है जो नितान्त अनुभूति-शून्य होने से निष्प्राण है।...तो भी ग्रन्थि एक प्रशंसनीय काव्य है। [पंत का काव्य और युग, पृ० ६०-६।

शचीरानी गुर्टू

पत द्वारा रचित 'ग्रन्थि' भी कवि की व्यक्तिगत प्रणय वेदना की सहज उद्भूति है जिसमे विफल प्रणयोन्माद और प्राणो की अजान तडपन छिपी है। कवि का हृदय दुःख दग्ध और चिन्ताओ से ग्रस्त है, तो भी आन्तरिक पीडा ज्वलित आत्मा बन कर फूट पडती है। कहना न होगा कि 'ग्रन्थि' और 'एपिपशिडियॉन' (शेली की कविता) दोनो मे ही प्रेम की मार्मिक अभिव्यंजना, कला का निखरा रूप, हृदय की अन्तरमय अनुभूतियो का अभिनव चित्रण, निराशा दुःख आकुल वेदना और हृदय को उन्मत्त बना देनेवाली भावना का जाग्रत स्वरूप है। कही प्रेम की शीतल धारा प्रवाहित हो रही है तो कहीं हृत्तल से विरहाग्नि की चिनगारिया छिटक-छिटक कर बाहर फूट पड़ती हैं। कही करुण उच्छ्वास है तो कही आँसू की बूँदे, कहीं उन्मुक्त प्रेम की कलकल ध्वनि है तो कही आन्तरिक वेदना का करुण-क्रन्दन! दोनो ही प्रणय-ग्रन्थ उत्कृष्ट, चित्रमय कल्पना से युक्त और परिष्कृत शृंगार-रसज्ञता से ओतप्रोत है।

शान्तिप्रिय द्विवेदी

'ग्रन्थि' भावात्मक प्रणय-गल्प है। कवि ने कल्पना को संगिनी बना कर अतीत की मधुर स्मृति को जगाया है...किन्तु इस सुख का दिवसावसान हो जाता है और आनन्द-बिहार की नौका ताल मे डूब जाती है। 'ग्रन्थि' की प्रणय-कथा कवि की सुकुमारता के अनुकूल ही है, वह 'लोल लहरो पर कलापति से लिखी' हुई है। इसकी विशेषता कहानी की शैली मे है;

घटना की अपेक्षा इसमें नाटकीय संकेतों की सूक्ष्मता है। नायिका अपनी लज्जा-सुलभ मर्यादा में मौन-दृगी है, नायक अपनी अधीरता में मुखर। एक श्रवण-सहृदया है, दूसरा उद्वेलित उद्गायक! अभिनय की दृष्टि से दृश्य-योजना सुन्दर है। नायक की विकलता से नारी की संवेदनशीलता भी उत्कंठित हो उठती है। किन्तु दृष्टि की तरह उसके कंठ में भी संयम है।" इस प्रकार नायक-नायिका के हृदय में प्रणय की प्राण-प्रतिष्ठा हो जाती है। उनके प्रेम में अन्तः साक्ष्य है। उस मौन कण्ठ का एक शब्द निःसन्देह तावीज-सा ही है, मंत्र-सा। नायिका की अन्तर्वेदना एकान्त में भी मौन है, अव्यक्त है। ध्यानस्थ नायिका वातायन से उद्यान की ओर देख रही है। यहाँ पर कवि ने एक मार्मिक दृश्य और मनोहर वातावरण की अवतारणा की है।"...इस प्रेम काव्य में शृंगारिक युग और छायावाद-युग की संचेतना का सम्मिश्रण है। छायावाद का कलाकार होकर भी 'ग्रन्थि' में कवि ने मध्ययुग की शृंगारिकता को उसी तरह अपनाया है जिस तरह पाश्चात्य नागरिक कभी-कभी प्रीति-सम्मेलनों में पुरातन परिधानों को मनोरंजक कुतूहल के लिए पहनते हैं। छायावाद की अतीन्द्रिय अनुभूति से कवि अपरिचित नहीं है, किन्तु 'ग्रन्थि' में उसकी तरुण [illegible] का अनुराग है। वह कहता है

अनिल कम्पित कमल-कोमल गात को
चूम कर रसिक! किसकी चाह की
आह तुम हुई? तुहिन जल से हसित
कलियों को चूम किसका मन बुझा?

[illegible] 'किसकी' शब्द में छायावाद के वायवी सौन्दर्य (हवाई [illegible] उसे आकाश-कुसुम भी कह सकते हैं। मीरा [illegible] नेत्र की तरह ही छायावाद के [illegible] अपना एक अस्तित्व है। 'ग्रन्थि' का कवि [illegible] सौन्दर्य अपनी अस्थिरता में छायावाद की

सूक्ष्मता की ओर ही अनुप्रेरित करता है, कवि स्थूल और सूक्ष्म दोनो को चाहता है, इह लोक और अन्तर्लोक के लिए। सौन्दर्य और प्रेम की स्थूलता मे भी कवि की सूक्ष्म सुरुचि सजग है

'ग्रन्थि' दुःखान्त है। विरह मे कवि का अन्तर्जगत् अधिक जाग्रत हो उठा है। सौन्दर्य और प्रेम की ऐहिक विफलता के बाद कवि के उद्‌गार विक्षिप्त हो गये है। इस विक्षिप्तता मे सामाजिक और नैतिक विद्रोह है, किन्तु जीवन से विरक्ति नही, एक मधुर शान्ति है--

आज मैं सब भाँति सुख - सम्पन्न हूँ
वेदना के इस मनोरम विपिन में;
विजन छाया में द्रुमों की, योग - सी
विचरती है आज मेरी वेदना।
विपुल कुञ्जों की सघनता में छिपी
ऊँघती है नींद - सी मेरी स्पृहा;
ललित लतिका के विकम्पित अधर मे
काँपती है आज मेरी कल्पना।

'विजन छाया' मे कवि की वनवासिनी योगिनी सी वेदना की तितिक्षा है, 'विपुल कुञ्जो की सघनता' मे घनीभूत आकाक्षा है, 'लतिका के विकम्पित अधर मे' प्रेम की स्वप्निल प्रतीक्षा है। इन विरोधी वृत्तियों मे ही प्रेम का व्यक्तित्व सुसंघटित है। उसमे मनोयोग भी है, मनोरथ भी। प्रकृति के प्रतीको से कवि ने अमूर्त्त मनोवृत्तियों को बड़ी सजीवता से दृग्गोचर कर दिया है।

'ग्रन्थि' के अन्तिम अंश मे मनोरागो का चित्राकन है। सौन्दर्य, प्रेम, स्मृति, नियति, आशा, उन्माद, आह, अश्रु, वेदना इत्यादि के सम्बन्ध मे कवि की लेखनी किसी कुशल चित्रकार को तूलिका बन गई है, प्रत्येक उद्‌गार साकार भाव बन गया है। आशा का नयन-मनोरम दिव्य रूप देखिये—

देवि ! ऊषा के खिले उद्यान में

सुरभि वेणी में भ्रमर को गूँथ कर,
रेणु की साड़ी पहन, औ' तुहिन का
मुकुट रख, तुम खोलती हो मुकुल को !

'नीहार' के प्रसंग मे पंत ने महादेवी का कवि-परिचय इन शब्दो में दिया था—'नीहार की कवि वस्तु-जगत् की अनुभूति नहीं रखती, भावना द्वारा ही वे वस्तुओं को परखती है। मेघ-मरुत्, पुष्प-लहर आदि सभी इस जगत् के उपकरण मनोवेगों मे रंजित होकर उसके सामने आते है, मनोराग की आँखो से ही वे उसकी कल्पना करती है।·····'—यही बात छायावाद के प्रत्येक भाव-प्रवण कवि के लिए कही जा सकती है। उसकी कविता मे चाहे वस्तु-जगत् की अनुभूति न मिले, किन्तु जीवन मे वह वस्तु-जगत् से अनभिज्ञ नहीं रहता। इस हृदय-हीन ससार मे वस्तु-जगत् का भुक्तभोगी भला कवि से अधिक कौन हो सकता है ! वस्तु-जगत् को वह अपना बलिदान देता है, भावजगत् को वरदान, इसलिए सृष्टि इतनी सुन्दर है।

'वीणा' के बाद 'ग्रन्थि' देखने से ज्ञात होता है कि कवि पूर्व-परिचय चित्रपट को छोड कर कुछ देर के लिए किसी अन्य चित्रपट पर अपनी तूलिका का परीक्षण करने लगा। 'ग्रन्थि' से तत्कालीन साहित्यिक वातावरण का परिचय मिलता है। एक ओर ब्रजभाषा में रीतिकाल की कला चली आ रही थी, दूसरी ओर खड़ी बोली में छायावाद की कला अतुकान्त मे रीति युग से मुक्त होने का प्रयत्न कर रही थी। 'ग्रन्थि' मे कवि ने विगत और आगत कला का अपने ढंग से समन्वय किया, अतुकान्त को अलंकृत कर दिया। अन्त्यानुप्रास के अभाव मे भी शब्दानुप्रासो से भाषा मे सगीत आ गया है। पद-प्रवाह मे यद्यपि भाराक्रान्त यौवन की मन्थरगति है, तथापि उसमे यथास्थल माधुर्य भी है और ओज भी। 'ग्रन्थि' के प्रणयन मे कवि ने शृंगारिक कविता के उपकरणो का पूर्ण उपयोग किया है, किन्तु पुराने उपकरणो को उसने नवीन सौन्दर्य दे दिया है। यथा—

इन्दु पर, उस इन्दु मुख पर साथ ही
से लेकर
प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य में।

इस चित्र मे वही मध्ययुगीन मुख है, वही अलक है, वही अलंकार है किन्तु उपमा और रूपक ने नूतन आकार-प्रकार पा लिया है। रसोद्दीपन की तरह उपमा के लिए भी काव्य मे कुछ उपादान रूढ़ हो गये है। 'ग्रन्थि' मे कवि ने नये उपमान और उपमेय दिये है, वे जीवन के अनुभूत क्षणो को प्रत्यक्ष करती है। यथा—

सजनि! पतले पत्र-से चित्रित जलद
से लेकर
चाह-सा, सुधि-सा, सगुन-सा, स्वप्न-सा।

इन पक्तियो मे वातावरण और जीवन की सरलता, सरसता, सजीवता है। इस तरह की सूक्ष्म उपमाएँ कवि की रचनाओ मे यत्र-तत्र बिखरी पडी है। कवि की उपमाओ मे केवल रूप-चित्र ही नही ध्वनि और व्यंजना भी है। आचार्य शुक्लजी ने कहा है कि लक्षणा का पेट बहुत बडा है किन्तु पतजी की उपमा का उर इतना विशाल है कि उसीमे सभी अभिव्यक्तियो का समावेश हो जाता है। कवि ने यत्र-तत्र शब्दो की लय से भी रस को साक्षात् किया है, यथा—

शून्य जीवन के अकेले पृष्ठ पर
विरह! अहह, कराहते इस शब्द को
किस कुलिश की तीक्ष्ण, चुभती नोक से
निठुर विधि ने अश्रुओ से है लिखा!

इसमे जीवन के सूनेपन और कराहने का भाव शब्दो की ध्वनि से व्यजित है। अश्रुओ मे कुलिश की तीक्ष्ण चुभन से वेदना की सजलता, कोमलता का मर्मान्तक परिचय मिलता है। 'वीणा' के बाद 'ग्रन्थि' मे पत की शब्द शक्ति और रागशक्ति बढ़ी। 'ग्रन्थि' का लेखनकाल वही है जब कवि मध्यकाल और द्विवेदी-युग की कविता

का अध्ययन कर रहा था। 'ग्रन्थि' मे इन युगो का यत्किञ्चित् प्रभाव किन्हीं पंक्तियो मे देखा जा सकता है। 'रघुवंश' के अध्ययन से भाषा मे संस्कृत शब्दों का बाहुल्य है। अलंकार और शैली की नवीनता से ज्ञात होता है कि कवि अंग्रेजी रोमान्टिसिज्म से परिचित हो चुका था। 'वीणा' मे कवि-प्रतिभा का कैशोर था, 'ग्रन्थि' मे तारुण्य, उसमे कवि का रसमय हृदय आषाढ की नवघटा की भॉति उमड पडा था।

[ज्योति-विहग, पृ० ७३–८४।]

'वीणा' के उपरान्त 'ग्रन्थि' की कला मे इतना अन्तर है कि देख कर आश्चर्य होता है। वीणा की सहज-सरलता, भोली मार्मिकता न जाने कहॉ चली गई है। लगता है जैसे बचपन खीच कर यौवन होते ही अलंकरण के लिए आकुल हो उठा हो। यहॉ भाषा भिन्न-भिन्न प्रकार की है, चित्र भिन्न प्रकार के है, अलंकार भिन्न प्रकार के है और व्यंजना भिन्न प्रकार की है। कला की दृष्टि से 'ग्रन्थि' पंतजी की पहली प्रौढ़ कृति है। इस रचना पर संस्कृत शैली का बड़ा भारी प्रभाव है। तत्सम् शब्दो का आधिक्य है और पंक्ति-पंक्ति मे समास बिछे पड़े है। शैली की रुकावट के कारण एक-एक पंक्ति पर बिना सोचे पाठक अर्थ ग्रहण नही कर सकता और न कथानक के साथ आगे बढ़ सकता है। इसीसे काव्य-कहानी वर्णन-प्रधान हो गई है। भावो की शक्ति भी कम नहीं है, पर वे यहॉ-वहॉ वैसे ही झलकते है जैसे पत्तो के ढेर मे कहीं-कहीं फूल मुँह निकाल कर हँसते हो। कथानक की दृष्टि से कहानी की गठन एकदम निर्दोष नही है। बीच-बीच मे पंतजी पाठकजी को संशोधन करने लगते हैं, कही-कहीं घटना की सूचना पहले से ही दे देते हैं। कहीं-कही उनका वर्णन भी अनुपात से बढ़ जाता है; जैसे, तीसरी सखी की प्रणय-चर्चा जिसे एक अन्य प्रेमिका ने इतिहास का-सा कोरा वृत्त गिनना बतलाया है। कहानी मे नायिका के विवाह पर ही सार भूमि (Climax) आ गई है। उसके उपरान्त थोडी दुःख-चर्चा हो सकती थी, परन्तु

विश्वम्भर 'मानव'

इसके स्थान पर कवि दर्शन, सौन्दर्य, प्रेम, स्मृति, नियति, आशा, उन्माद, कल्पना, आँसू, वेदना, विरह, संसार, सुख, ज्ञान आदि पर व्याख्यान देने बैठ गया है। उसके दुःख मे लोग जब उसे सान्त्वना देते है तो वह कहता है : विरस उपदेश के उपल रहने दो। पर सच बात यह है कि कहानी के अन्त मे विरस उपदेश के उपल उसने भी कम नहीं मारे है। फिर भी कवि की अवस्था को देखते हुए और यह सोच कर कि जो व्यक्ति प्रधान रूप से गीतिकार है उसने प्रबन्ध की भूमि में प्रवेश किया है, यह मानना पडता है कि 'ग्रन्थि' एक सफल खण्ड-काव्य है, जैसा प्रसाद का 'आँसू', निराला का 'तुलसीदास' और मैथिलीशरण गुप्त का 'नहुष'। मेरा पूरा विश्वास है कि पंत जी ने गीतों के समान ही यदि थोड़े प्रबन्ध काव्य लिखे होते तो हिन्दी साहित्य मे उनका एक विशिष्ट स्थान होता। [सुमित्रानंदन पंत, पृ० ४१८-६।]

'ग्रन्थि' वियोग श्रृंगार की कविता है जो एक युवक हृदय की प्रणय कहानी पर आधारित है। इसमे नायक स्वयं आत्मकथा के रूप मे आप बीती सुनाता है। कहते है कि 'ग्रन्थि' की प्रणय कहानी का सम्बन्ध कवि के आत्म-जीवन से ही है।....'ग्रन्थि' मे श्रृंगार के प्रमुख संचारी भावो की सुंदर अभिव्यंजना है। गीतिमयता इस काव्य की विशेषता है। अन्य काव्यो की अपेक्षा यह अधिक अलंकृत है। प्राकृतिक दृश्यो का भी चमत्कारिक और चित्रमय वर्णन भी यत्र-तत्र मिलता है।

गोपालकृष्ण कौल

'ग्रन्थि' वर्णन-प्रधान काव्यकथा है। इसमे कवि को कथा के तत्वो की अपेक्षा प्रकृति-वर्णन मे, भावनाओ के वर्णन मे तथा सौन्दर्य-चिंतन मे अधिक सफलता मिली है। प्रकृति का खुला रूप ग्रन्थि मे आकर अभिसारिका का यौवन बन चुका है। कवि की वह कल्पना जिसने प्रकृति को वीणा मे भावना के माध्यम से देखा है, ग्रन्थि मे उसी प्रकृति को अभिसार की पृष्ठभूमि के रूप मे देखती है। 'ग्रन्थि' का आरम्भ इसी प्रकृति चिंतन से होता

फूलचन्द पाण्डेय

है। '' प्रकृति-वर्णन के माध्यम से कवि ने परिस्थिति, समय तथा प्रवृत्ति तीनों का संकेत किया है। '' ''''इस प्रकार जीवन की सौन्दर्यानुभूति से प्रारम्भ कर धीरे-धीरे कवि गम्भीर से गम्भीरतम होता जा रहा है और पूर्णता पाकर 'ग्रन्थि' विरह-वर्णन-प्रधान काव्य बन जाती है। 'ग्रन्थि' केवल क्रन्दन नाद है, उसका परिणाम नहीं। उसकी विरहमयी प्रेम-कथा की पूर्णता तो ग्रन्थि, उच्छ्वास तथा आँसू लिख लेने के बाद होती। अभी तो 'ग्रन्थि' मे उसके प्रेम जीवन की पहली कहानी है, पहली ठेस है। इस ठेस को पाकर स्वभावतः कोमल-हृदय कवि रोता ही रहेगा और वह भी 'रोना' न होकर अन्तर का सिसकना होगा। ऊपर के विवेचन से अब पूर्णतः स्पष्ट हो गया होगा कि 'ग्रन्थि' उस कोमल हृदय की चीत्कार है जो अनजान अधखिली कली के समान मसल दिया गया है और वह खुलकर 'आह !भी न कर सकी हो।

'ग्रन्थि' मे स्पष्टरूप मे कवि अनुभूति और वासना—तीव्र इच्छा का ही गायक है। जाँघ, कपोल, मृगेक्षणी आदि शब्द बड़ी ही स्पष्टता मे वासना के उद्गारों को प्रकट करने मे सहायक है। . . . मैं इसे स्पष्ट रूप से कह सकता हूँ कि पंतजी ने यद्यपि 'ग्रंथि' को पूर्ण काल्पनिक बतलाया है परन्तु वे अपना आन्तरिक व्यक्तित्व किसी भी भाँति अपनी 'ग्रन्थि' मे नहीं छिपा पाये है। हम इसे मान भी ले कि 'ग्रन्थि' उनके जीवन की ग्रन्थि नहीं है, परन्तु वर्णित व्याख्याएँ काल्पनिक नहीं हो सकतीं। वे कल्पना की समतल भूमि से कही बहुत अधिक ऊँचे हैं। पूर्ण अनुभव पर स्थिर है। यथार्थ हैं। इस कथन की पुष्टि 'ग्रन्थि' काव्य ही करता है। जहाँ तक वह उनके अनुभव पर आधारित है, उसमे प्राण है, सरलता है, जीवन है, गति है, सत्य है, परन्तु जहाँ कवि ने केवल कल्पना और परम्परागत अध्ययन का आश्रय लिया है, निष्प्राणता आ गई है, नीरसता प्रधान हो गई है, कृत्रिमता प्रमुख हो गई है, चिंतन बढ गया है, रूखापन स्पष्ट हो गया है। 'ग्रन्थि' में जब तक कवि ने प्रेम की व्याख्या प्रस्तुत की है तब

तक तो अनुभव का आधार स्पष्ट है परन्तु अन्त मे जहाँ वेदना का विश्लेषण एवं विवेचन किया है वहाँ पूर्ण निष्प्राणता आ गई है—

वेदना ! कैसा करुण उद्‌गार है,
वेदना ही है अखिल ब्रह्माण्ड यह
तुहिन में, तृण में, उपल में, लहर में
तारको में, व्योम में है वेदना !
वेदना कैसा विपद् यह रूप है,
यह अँधेरे की दीपक-शिखा,
रूप की अन्तिम छटा ! इस विश्व की
अगम-चरम अवधि, क्षितिज की परिधि सी !

कवि का वह व्यक्तित्व, जो लाज का लालिमा चित्रित कर उसके 'अन्तर' को स्पष्ट कर सकता था वही कवि 'वेदना' का विश्लेषण करने के-लिए विश्व, ब्रह्माण्ड का एक-एक कोना टटोलता फिरता है। 'ग्रन्थि' के अधिकाश मे वह अनुभूति का आधार निश्चय रूप से लेता है परन्तु जहाँ जीवन को केवल वेदना का सिंधु कहता है, स्पष्ट मालूम हो जाता है कि उसका पुस्तकीय अध्ययन बोल रहा है, कवि का अन्तर नहीं। आलोचक कह सकते हैं कि यह कवि की चिंतन भूमि है परन्तु उन आलोचको से बडी ही नम्रता से मै पूछना चाहूँगा कि विश्व की वेदनात्मक सत्ता का संकेत पंत का अनुभूतिपूर्ण कवि एक शब्द मे करा सकता है फिर इतनी लम्बी-चौड़ी व्याख्या प्रस्तुत करना कितना संगत है ? अनुभूति के संग पाठक वर्ग की सहानुभूति रहती है परन्तु अध्ययन के साथ पाठको का मस्तिष्क रहता है। हृदय ऐसी अवस्था मे ऊबने लगता है। किसी काव्य-अंश का नीरस प्रतीत होना ही अनुभूति की कमी की ओर संकेत करता है। अन्तिम अंश मे कवि अनुभूति से दूर हो सकता है—यह सत्य है, परन्तु सम्पूर्ण ग्रन्थि काव्य के लिए बच्चनजी का वह कथन ठीक नहीं उतरता।

साराश मे कहा जा सकता है कि 'ग्रन्थि' पंत के कवि-व्यक्तित्व की

असफल प्रेम की कहानी है जो पूर्ण विकसित होने से पहले ही अध-खिली कली की भाँति मसल दी गई है। मूल रूप मे वीणा का अध्यात्मवादी चिन्तनशील कवि लौकिकता का समर्थक हो गया है। प्रकृति का पुजारी नायिका का उपासक बन गया है। वह नायिका के अंगराग की सद्गन्धि पर भौंरे-सा मड़राता है, उसके श्वास के घेरे मे वह बन्दी होना चाहता है। वीणा का आशावादी पंत का कवि ग्रन्थि मे आकर निराशाजनक श्वास लेता दिखाई देता है।

[पंत : आधुनिक कवि, पृ० १०७-१३।]

ग्रन्थि विप्रलंभ शृंगार की कविता है, युवक हृदय का आग्रह भी यही होता है। इसकी कथा प्रथम पुरुष मे आत्मकथा के रूप मे चलती है—नायक स्वयं अपनी बीती सुनाता है। कवि की दृष्टि से कथा मे एक विषमता है। वैसे तो यह सर्वत्र ही बड़ी मन्दगति से चित्रित और पुष्पित दृश्यो तथा अनेक चितनो से होती हुई चलती है परन्तु एकाध स्थान पर जहाँ कवि को केवल इतिवृत्त मात्र ही कथन करना है, उसकी गति मे लपक-सी आ जाती है।......... वास्तव मे 'ग्रन्थि' गीतिकाव्य ही है, उसे खण्ड काव्य कहना उसके समझने मे बाधक होगा। हाँ, कहीं कहीं चिंतन का अत्यधिक समावेश अवश्य उसकी गीतिमयता और काव्य दोनों मे व्यवधान डालता है।

डा० नगेन्द्र

'ग्रन्थि' का अर्थ-विश्लेषण

एक बार बिंधे हृदय .... गा लें स्मृति मधुर। (पृ० ४)

कवि कल्पना का आह्वान कर रहा है। कल्पना कवि को वास्तविकता से दूर ले जा सकेगी। कल्पना ही कवि के शत-शत खण्डित हृदय को बाँध सकेगी। कल्पना के सहारे ही कवि विगत प्रणय-व्यापार की मधुमय स्मृति में मग्न हो सकेगा और अपने खोये हुए रत्न (प्रेमिका) की खोज कर सकेगा। जो सुख नित्य के व्यावहारिक जगत मे प्राप्त नही हो पाता, उसकी प्राप्ति तो कल्पना या स्वप्न मे ही सभव होती है। इसीलिए कवि ने कल्पना का मनुहार किया है। कवि कल्पना के वल से ही पुनः जवानी की मदमाती कल-कल, छल-छल तरंगो मे अपनी चंचल आँखो को मछलियो के समान पेग लेकर झूला झूल लेने को कहता है। यौवन-सहजात (फेन) आनन्द के मोतियो को सुख के धागे मे पिरो कर क्षणिक बुदबुदो के समान मीठी याद के गीत गा लेने का लोभ कवि अभी भी रोक नही पा रहा है। कवि के वश की वात भी तो यही रह गई है कि वह केवल अपनी प्रिया के मिलन के क्षणो की, उस आनन्दातिरेक की अवस्था की उन दिनो यौवन के उद्दाम चपल तरगो की तथा मन-प्राणाह्लादक प्रणय-संगीत की केवल याद भर कर ले। इसीसे प्रेमिका का सानिध्य संभव है।

एक पल जग सिन्धु.... ... विरही विश्व को। (पृ० ६)

कवि विगत प्रणय-केलि की स्मृति से पुलकायमान हो उठा है। आनन्द की पुलकावलियो मे वह यथार्थ संसार के गंभीर गीत (हाहाकार, आह, आर्त्तनाद, विरहादिक) को डूब जाने को कहता है जिससे क्षण भर के लिए भी तो कवि अपनी प्रिया की दयार्द्र-मधुर-मुख-शोभा का अवलोकन कर ले जो चचल चपल लहरो पर चाँद के द्वारा चाँद-सा प्रतिविम्बित हो रहा है। कल्पना-लोक निस्सीम आकाश के समान विशाल है। कवि भाव-पवन के पंखो पर बैठकर उस विशाल

सुख-साम्राज्य में शरद् के कपोत-कर्बुर-मेघ-खण्ड के समान विलीन हो जाना चाहता है। करुणा-विगलित आँसुओं के समान वह एक बार नयन-नीलाबर मे छलक कर गिर जाए, कोई चिन्ता नहीं ; परन्तु थोड़े ही समय के लिए सही, इस विरह-यातना-भोगी ससार से पृथक होकर, इसे पूर्णतः भूलकर प्रणयास्वादन के क्षण सुलभ हों, यह कवि की उत्कट कामना है।

वह मधुर मधुमास था··· ·····ईश से। (पृ० ६)

कवि ने कल्पना को सगिनी बनाकर अतीत की मधुरस्मृति को जगाया है। मधुर मधुमास (वसन्त) ऋतु थी। माधवी गन्ध से मदान्ध हो भ्रमरावलि झूम रही थी। कोयल की मीठी तान से आम की डाली-डाली नव किसलय युक्त होकर रस-सिक्त हो रही थी। पृथ्वीतल का सुख दिन के समान बढ़ रहा था। वसन्त के नवशुभागमन के अवसर पर अपनी समस्त कोमल कामनाओं को समेट कर कलियाँ विकसित होकर फूल हो गईं। यह प्रयास उनका 'अवनि के ईश'— ऋतुराज (वसन्त) के कृपा-कटाक्ष मात्र से सफल होने का कहा जा सकता है। कवि अपनी प्रिया सहित तरुण हो चुका है। यौवन-कली पूर्ण विकसित होकर प्रणय-वाटिका से बढ़कर पंचशर की सेवा बलिदान होने की कामना रखती है।

रुचिरतर निज कनक········तिमिर में। (पृ० ७)

सन्ध्या हो चली थी। कृपण के समान सूर्य अपनी चतुर्दिक फैली हुई स्वर्णिम किरणों को समेटता हुआ अस्तप्राय हो रहा था। जैसे एक निवृति-मार्ग का अवलम्बन कर लेने पर भी अपनी छिट-फुट यतस्ततः वितरित वासनाओं को समेट नहीं पाता, बल्कि वे दिखाई पड़ती ही रह जाती हैं, उसी प्रकार अभी भी आकाश अस्ताचलगामी सूर्य की किरणों से रक्ताभ दिखाई पड़ रहा था। सूर्य के प्रकाशहीन हो जाने पर आकाश की अरुणिमा आनेवाले रात्रि के अन्धकार से

छिपाए नहीं छिपती थी, जैसे पतितावस्था में प्राप्त ख्याति, यश या कीर्त्ति जल्दी समाप्त नहीं हो जाती।

तरणि के ही संग·········हमारी सो गईं। (पृ० ७)

सूर्यास्त के साथ ही कवि की नाव चंचल लहरों के थपेड़े खाकर जल-गर्भ में निमग्न हो जाती है। कवि संध्या के जीवन के साथ अपना संसार लेकर ताल के जल मे डूब गया। नाव के साथ कवि के डूब जाने पर जल-सतह पर उठनेवाले बुदबुदे मानो जीवन की क्षण-भंगुरता का पाठ दुहराते, उठने और विलीन होने लग गए। कवि की साँसे गुम हो गईं। वह चेतनाशून्य हो गया, कारण, पानी में जो डूब गया।

× × ×

जब विमूर्च्छित नींद से·· ··· ··कली के साथ ही। (पृ० ८)

कवि सूर्यास्त की वेला में डूब गया था और अचेत हो गया था। उसके बाद कवि की चेतना लौट आयी। उस समय का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि जब मै उस विशेष प्रकार की विमूर्च्छित नींद से जागा परन्तु मुझे इस बात का ज्ञान नहीं रहा कि किस प्रकार मूर्च्छा-वस्था से जाग्रतावस्था में आया) तव देखा कि अमृत तुल्य एक कोमल समवेदना से पूर्ण दीर्घ निःश्वास मुझे पुनर्जीवन दे रहा था। मैं तो नौका के डूब जाने के कारण अपना जीवन खो बैठा था किन्तु उसकी समवेदना ने मुझे फिर से नया जीवन प्रदान किया। उस समय संध्या रात्रि मे परिवर्तित हो रही थी, रात्रि भींगने चली थी क्योंकि सूर्यास्त के समय कमल की पखुड़ियाँ सकुचित हो रही थी जिनमे भ्रमर-बालाओं का माधुर्यपूर्ण मादक और मनमोहक गुंजार वन्द हो चुका था। रात्रि के आगमन के साथ-साथ कुमुद की कलियाँ भी खिल रही थीं और उन कुमुद कलियो के साथ हम दोनों (कवि और बालिका) के काम्य उपवन (रमणीय हृदय) मे प्रेम-रूपी कमल भी विकसित हो गया।

शीश रख मेरा सुकोमल······मात्र साधन दीन की ! (पृ० ८)

जब मेरी चेतना लौटी तो मैंने देखा कि चन्द्रकला-सी एक सुन्दर बाला मेरा सर अपनी सुकोमल जाँघ पर रखकर व्यग्र होकर मेरे म्लान मुख को स्थिर, दयापूर्ण, भीरुतायुक्त, धैर्यशून्य और चिन्तापूर्ण दृष्टि से देख रही थी। वह एक टक से देख रही थी, उसकी दृष्टि मे करुणा का सागर उमड़ रहा था। उसकी दृष्टि में मेरे जीवन के लिये भय का भाव सन्निहित था। वह मेरे जीवन को बचा लेने के लिये अत्यन्त अधीर एवं चिन्तित थी। उमे कोई उपाय नही सूझ रहा था फिर भी उसके कोमल हृदय की आशा और स्नेह भरी वह दृष्टि अत्यन्त सकरुण थी और मेरे जीवित रह जाने की मगल कामना व्यक्त कर रही थी। पर हाय। वह कैसे जान पाये कि वह दृष्टि ही मुझ दीन को पुनर्जीवित करने के लिये एकमात्र सहारा थी।

नित्य ही मानव तरंगों···· ·है नहीं यों दूसरी। (पृ० ९)

कवि कहता है कि यो तो मानव कई बार इस ससार-रूपी सागर मे डूब चुका है और नित्यप्रति डूबता रहा है। लेकिन इस ससार में कितने ऐसे मनुष्य है जो अमृत की जीवनमयी लहर की बाँह में अभी झूला झूल रहे है। अर्थात् कितने मनुष्यो को किसी बालिका की बाहो के द्वारा उद्धार मिल सका है! ऐसा सौभाग्य बहुत ही कम मनुष्यो को मिल सका है। सच तो यह है कि जड़ लहरो मे डूबते-उतराते समय वह रमणी मेरे लिये अमृत की जीवित लहर बनकर आई तथा उसकी बाँह मे मुझे झूलने का अवसर मिला। ससार में मानव की चंचल जीवन रूपी नौका भँवर-सी घूमकर डूब जाती है परन्तु डूबने के बाद आसानी से इस प्रकार दूसरी नौका सबको नहीं मिलती। वस्तुतः मेरी जीवन रूपी नौका तो भँवर मे डूब चुकी थी किन्तु वह नवयुवती अपूर्व नौका बनकर मेरे जीवनोद्धार के लिये पहुँच गई।

इन्दु पर, उस इन्दु-मुख·········सुछबि के काव्य में। (पृ० ६)

कवि कहता है कि मूर्च्छा टूटने पर मेरी दृष्टि सहसा आकाश की ओर गई जहाँ कि पूर्णिमा का चाँद उग आया था और साथ-साथ उसकी नजर पृथ्वी के चाँद पर भी गई। दोनो चाँद को मैंने एक-साथ देखा। दोनो ही रक्तिम आभा से पूर्ण थे। आकाश का चाँद उदय-काल से ही लाल था, पर पृथ्वी के चाँद का मुख लज्जा के कारण रक्तिम था। यह मेरे जीवन की एक अनुपम, अपूर्व एवं आश्चर्यजनक घटना थी। यह मेरे लिये दूसरा आश्चर्य था। हवा के हलके झोके के कारण बालिका की एक लट उसके मुख पर आ टिकी। वह ऐसी प्रतीत होती थी, मानो भूली हुई बाल-रजनी चन्द्रमा के मुखमण्डल के बीच आ गई हो। कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता था कि अच्छे काव्य में ये अलके मुख को रेखांकित करते हुए उनके विशेष महत्व को सूचित करती है।

एक पल, मेरे प्रिया ·· तरुण सौन्दर्य के। (पृ० १८)

पल भर के लिये उस बालिका के नयन ऊपर उठे और मुझपर नजर पड़ते ही वे नयन नीचे गिर गये। स्नेहाधिक्य के कारण शरीर में रोमांच हो गया, उसमें कम्पन हुआ। कवि कहता है कि मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि चंचलता और सिहरन—दोनो ने मिलकर प्रणय-सम्बन्ध को और दृढ़ कर दिया। नयनो के बीच प्रणय का मूक सम्भाषण हुआ। लज्जा के कारण उसके गाल लाल हो गए और वह लाली कवि को मादक सुरा-सी मस्त बना देनेवाली प्रतीत हुई। जिस प्रकार सुरापान करनेवाले व्यक्ति के हृदय मे सुरा की लालिमा मादकता भर देती है, उसी प्रकार उस बालिका के कपोलो की गुलाबी लाली ने कवि को मदमस्त कर दिया। वह आत्मविभोर हो गया। ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उस बालिका के अतिशय सौंदर्य की बाढ़ मेरे हृदय मे आ गई। उसका सौंदर्य छलक पड़ा। आगे चलकर कवि उस बालिका के गालो की लालिमा को और भी स्पष्ट करने के लिए एक दूसरी वस्तु से तुलना करता है। वह कहता

है कि वह लालिमा सौंदर्य के अधखुले सस्मित गढ़ो में—उसके गालों मे हँसने के कारण गढ़े पड़ जाते थे—स्वयं ऐसी छलक रही थी कि जिस प्रकार सागर मे सीप अपने आप झलकती है। 'इन अधखुले सस्मित गढ़ो मे रूप के भँवरो के कारण तथा यौवन के सौंदर्य-भार से दवकर नाव से किसके नयन, भटकते हुए नहीं डूब गए है? कवि कहता है कि ये कपोल सौंदर्य के अधखुले सस्मित गढ़े हैं, इनमे रूप की लहरे उठ रहीं हैं, नयन की नावे तिर रही हैं, उन नावों मे यौवन का सौंदर्य-भार है। कोई भी ऐसा नहीं है जो इस रूप के आवर्त्त में न डूब गया हो अर्थात् सभी डूब जाते हैं। कहने का अर्थ है कि उस वालिका के कपोलो पर लाज की लालिमा इतनी सुन्दर मालूम होती थी कि सभी के नयन उसकी ओर आकृष्ट हो सकते थे।' (श्री फूलचन्द पाण्डेय।

जव प्रणय का प्रथम ··········तुम्हीं प्रिय कान्ति हो। (पृ० १०-११)

कवि कहता है कि जव उसका मौन मेरे हृदय को प्रणय का प्रथम परिचय दे चुकी तव मैंने वडे यत्न से, अत्यन्त विनम्र वाणी में, प्रिया के पास वैठकर, शान्तिपूर्वक कहा कि—हे जल के समान निर्मल शोभा-वाली! यदि तुमने मुझ-से आहत भ्रमर को उठाकर अपने हृदय मे स्थान दिया है, यदि तुमने उसे डूवने से वचा लिया है, तो फिर जीवन की रक्षा कर अव उसे दूसरी प्रणयरूपी तरग मे क्यों डुवा रही हो? प्रणय की भीख माँगते हुए कवि कहता है कि तुमने मुझे जीवन-दान दिया है। और तुम्हारे प्रेम का प्रथम परिचय भी मुझे मिल चुका है। इसलिए अव तुम मुझे अपना वना लो। अव तुम मुझसे विलग होकर मुझे विरह के आवर्त्त में न डुवाओ, न ो नो मेरी सभी आशाओ पर पानी फिर जायगा, मेरी जीवन-लीला समाप्त हो जायगी। जो फूल अचानक अनजाने (प्रेमरूपी) काँटा से विंध गया हो और जो वृक्ष की डालियो से अलग होकर तुम्हारी राह मे पडा हो, उसे क्या तुम अपने हृदय की दया से

अभिसिंचित करती हुई सरस विकास न दोगी ? इस रूपक का आश्रय ग्रहण कर कवि ने अपने आहत हृदय के दर्द को अभिव्यक्ति दी है। सचमुच देखा जाय तो कवि के कहने का मूल भाव यह है कि कवि का हृदय प्रेमरूपी काँटो से बिंध गया है, और वह उस कोमल बालिका की छाया मे पड़ा हुआ है। इसीलिए वह उसे सम्बोधित कर कहता है कि क्या उसे तुम अपने दयापूर्ण हृदय से लगाकर सरस बनाती हुई विकसित नहीं कर सकोगी ? इस रूपक के अतिरिक्त कवि एक दूसरा रूपक भी प्रस्तुत करता है। वह कहता है कि उषःकाल की प्रथम रश्मियाँ अंधकार को छूती हैं और उसके परिणाम को हम विकसित कमल के रूप में देखते हैं। मेरा हृदय तम से रहित है, उसमे कोई कालुष्य नही और उस तम-रहित हृदय की प्रणय-कलिका की तुम ही कलकांति हो। कवि ने अपने जीवन मे सबसे पहली बार इसी बालिका से प्रेम किया है, उसने प्रणय-कलिका की तरह नया जीवन ग्रहण किया है, अब उसे खिलना एवं विकसित होना ही बाकी है।

यह बिलम्ब ! कठोर-हृदये .... छलकता है प्रीति से। (पृ० १६-.२)

कवि द्वारा किए गए प्रणय-निवेदन पर सहृदय बालिका मौन रही, जिससे कवि के हृदय को आघात पहुँचा और वह व्यग्र हो उठा, तिलमिला उठा। तब उसका चोट खाया हुआ हृदय उसे कठोर-हृदया कहता है। हे प्रिये ! तुम इस सत्य से पूर्णतया परिचित हो कि जलमग्न के लिए बालुका का सहारा भी बहुत होता है (अर्थात् डूबते को तिनके का सहारा बहुत बड़ा है), लेकिन यह जानते हुए भी तुमने मुझे सहारा नही दिया। आखिर तुम्हारी यह कठोरता किस काम की है। तुम कठोर हो, निर्दय हो, इसीलिए मुझे तुम्हारी कठोरता से सहारा पाने की अधिक आशा है; क्योंकि पर्वत-श्रेणियाँ अपनी निष्ठुरता एवं निर्दयता के कारण ही किसी डूबते हुए का आधार बन सकती है। बालुका का सहारा कमजोर होगा, क्षणिक

होगा लेकिन पर्वत-श्रेणियों का आधार अटल, अचल एवं चिरन्तन होगा ; क्योंकि वह निर्दय है, कठोर है। तुम भी पर्वत-श्रेणियों के समान कठोर हो। इसीलिए मुझे तुम्हारा भरोसा अधिक है। यह तुम जानती हो कि चन्द्रमा की कलाएँ ही घोर अंधकार में चाँदनी बनकर उज्ज्वल, निर्मल यश प्राप्त करती हैं। अंधकार के कारण ही चन्द्रमा की चाँदनी का महत्त्व है। अगर दिन के प्रकाश में चाँदनी छिटक जाय तो कोई भी उसका सम्मान नहीं करेगा। कारण स्पष्ट है, वह यह कि सूर्य का प्रकाश चन्द्रमा की चाँदनी से कई गुना अधिक होता है। चाँदनी [illegible] महत्त्व, [illegible] अस्तित्व तो अंधकार को नष्ट कर देने के कारण [illegible] है। [illegible] रात में फैले हुए अंधकार को हटाकर अपनी स्वच्छता [illegible] प्राप्त करती है। [illegible] तरह जानती हो कि दान का अभिमान [illegible] कोई दीन व्यक्ति न हो तो दान किसको दिया जाय [illegible] का पात्र विकसित होता है और मान उसी के [illegible] पाता है। सच तो यह है कि कवि ने इन रूपकों के माध्यम से यह स्वीकार किया है कि उसके सूने हृदय में उस बालिका की बहुत बड़ी जरूरत है, उसका अस्तित्व उसके प्रणय के संस्पर्श से सार्थक हो जायगा।

प्रिय निराश्रित की ····प्रतिबिम्ब दिखलाता सदा। (पृ० १२)

कवि कहता है कि जो आश्रय-विहीन होता है, उसे किसी का आश्रय पाने की उम्मीद होती है जिसके फलस्वरूप वह अपने-आपमें एक अद्भुत शक्ति का अनुभव करता है ; क्योंकि वह अब आश्रयहीन नहीं रह पाता। हे प्रिये। किसी भी निराश्रित की बाँहे किसी भी प्रलोभन-भार से शिथिल नहीं पड़ जाती हैं ; प्रत्युत् उनमे एक अपरिमित शक्ति आ जाती है। यदि वैसे व्यक्ति को यह आशा हो जाय कि कोई उसका अपना रहा है तो वह अपने मे अधिक शक्ति पाता है। यह

स्वाभाविक है कि जब उसे कोई आश्रय नहीं मिल रहा हो और कहीं से अपनापन की नई किरण मिली तो उसकी आँखे अनायास उमड़ आती हैं। जो आँखे विषम परिस्थितियों के चक्कर मे फॅस कर पथरा गई थी, वे तनिक सी सहानुभूति पाते ही अश्रु धारा-सहित बरस पड़ती है।

आगे चलकर कवि कहता है कि हे प्रिये। दयारूपी वायु के कारण मन अनेक भावपूर्ण लहरो से भर जाता है और मानस उस दया-युक्त वायु के उपकार को आजन्म नहीं भूलता, वह मानस उस क्षणिक करुणा-लोक के प्रतिबिम्ब को—इस ससार का और भी बढ़ाकर प्रदर्शित करता है। कवि के कहने का भाव यह है कि अगर किसी गरीब व्यक्ति पर कोई दया दिखलाता है या उसका उपकार करता है, तो वह दीन व्यक्ति कृतज्ञ ही नहीं होता वरन् उससे कहीं अधिक वह अपने को कृतज्ञ मानता है। वह उस मामूली-सी दया का आभार समुद्र के समान असीम और पर्वत-सा गुरु गम्भीर मानता है।

शरद के निर्मल तिमिर ... पूछता है वर सदा ? (पृ० १२-१३)

कवि कहता है कि हे प्रिय ! तुम्हारे मौन की आड़ से, शरद ऋतु के निर्मल तन की आड से, प्रथम मिलन की मादक और आलस्य-मय पलके लिए, कौन मुझे मादक बना रहा है। यहाँ पर कवि का इशारा स्मृतियों की ओर है। वह कहता है कि तुम मौन हो, लेकिन तुम्हारी स्मृतियाँ मुझे मादक बना रही है। आगे चलकर कवि प्रेम की व्याख्या करता हुआ कहता है कि प्रेम की भी क्या अनोखी रीति है, वह अगो से अधिक देखता है और सुनता है। प्रतिदिन वह दूर होता जाता है। ज्यो-ज्यो दूरी बढ़ती है, त्यो-त्यो प्रेम बढ़ता जाता है। वियोग मे ही प्रेम का यथार्थ रूप अभिव्यक्त होता है। दो बिछुड़े हुए हृदय और भी निकट चले आते है। प्रेम अन्धा होता है। उस दशा मे उचित-अनुचित का विचार नहीं होता। प्रेम किसी बन्धन को स्वीकार नही करता अर्थात् जाति-पाँति, रूप-रग धर्म आदि के बंधन से परे है।

इन्दु की छवि में·····दृष्टि मेरी दीप-सी । (पृ० १२)

कवि मूर्च्छा के कारण अचेत पड़ा था, जब उसमें चेतना आई तब वह उस बालिका से प्रणय की याचना करने लगा, पर संकोच एवं लज्जा के कारण बालिका मौन थी। उसके मौन से कवि की व्यग्रता बढ़ती है, उसकी उत्सुकता तीव्रतर होती है। प्रस्तुत काव्य-संदर्भ में कवि अपनी उत्सुकता को समस्त प्रकृति की उत्सुकता के रूप में देखता है। कवि की प्रेयसी मौन है, वह उसके उत्तर की प्रतीक्षा में है, लेकिन साथ-साथ प्रकृति भी उस प्रेयसी के उत्तर को सुनने के लिए उत्सुक है। वह कहती है कि चन्द्रमा की छवि में, व्यापक अंधकार में, पवन की गति-ध्वनि में, जल की लहरों में, फूलों की मुस्कान में, लताओं के अधरों में—यानी प्रकृति के प्रत्येक अवयव में वही उत्सुकता व्याप्त है जो कवि की है कि प्रेयसी का क्या उत्तर होता है और आगे क्या होता है। अब तक वह अपनी नीची दृष्टि किये हुए मेरी सभी बातें चुपचाप सुन रही थी और मेरे हृदय में विकलता भर रही थी। पर अब उस मृगनयनी ने अपनी दृष्टि ऊपर उठाई जिससे मेरी सम्पूर्ण विकलता उसी दृष्टि के साथ ही ऊपर उठ गई। एक ओर उसने अपनी दृष्टि भूमि से ऊपर की ओर उठाई और दूसरी ओर मेरे हृदय की विकलता दूर हो गई। एक ही पल में उसने अपनी काली आँखों के प्रेम से मेरे नेत्र रूपी दीप को भर दिया, परिपूर्ण कर दिया।

'नाथ'! कह अतिशय·····तावीज-से। (पृ० १२)

इस संदर्भ में कवि कहता है कि उस नवयुवती ने मुझे अत्यधिक मीठे स्वर में 'नाथ!' कहकर सम्बोधित किया। उस सम्बोधन में एक अपूर्व मिठास भरी थी। इस संबोधन के पश्चात् वह सुन्दर-वदनी सकुचा गई। इस संबोधन शब्द में ही उसने हृदय के समस्त भाव उसी प्रकार भर दिये जिस प्रकार एक छोटी-सी तावीज में अनिष्टों से

रक्षा की समस्त शक्तियाँ भर दी जाती हैं। वस्तुतः 'नाथ' शब्द ने कवि के मन-प्राणों को एक सूत्र के समान बाँध लिया।

देख रति ने मोतियों……और यह भीरुता ! (पृ० १४)

उस नवयुवती ने 'नाथ' संबोधन से पुकारने के बाद मौन धारण कर लिया क्योंकि उसमें लज्जा का भाव भर गया। उसके कपोल लाल हो गए, उसके दाँत रूपी मोतियों का कोष अधरों के विद्रुम द्वार से वन्द हो गया। कहने का तात्पर्य्य यह है कि उस नवयुवती के मोती सदृश 'नाथ' सम्बोधन मे खुले मोती के समान उज्ज्वल दंतपंक्ति रति-भाव प्रेम-भाव) की अधिकता के कारण अधिक समय तक खुली न रह सकी क्योंकि लाल मूंगों के समान अधरों का द्वार वन्द हो गया तथा लज्जा के कारण उसके कोमल कपोलों पर लाख के समान अरुणिमा छा गई।

इस संदर्भ मे कवि ने बालिका के हृदय मे जो अभिलाषा और संकोच का भाव है, उसका सुंदर रूप खड़ा किया है। उसके मुख-मंडल पर स्पृहा और संकोच का भाव अंकित है। प्रेमाधिक्य के कारण वह अपने आपको अभिव्यक्त करना चाहती है लेकिन लज्जावश वह मौन है, मौन रह रही है। उसके अधर काँप उठे। उसके दोनों कपोलों पर लालिमा की हलकी रेखा अंकित हो आयी है जिसमे विश्वविजयी प्रेम और सामाजिक भय दोनों के भाव मूर्त्तिमान हो उठे।

सुभग लगता है गुलाब……छिपाना चाहती। (पृ० १४)

गुलाब का सहज गुण है उसकी लालिमा जिसके कारण वह सुन्दर प्रतीत होता है। यदि वह सद्यःप्रस्फुटित हो और उसकी लालिमा मे म्लानता नहीं आयी हो तो उसकी सुन्दरता का कहना ही क्या ! (यहाँ पर गुलाब नवयुवती के कपोल का प्रतीक है जो लज्जा की लालिमा के कारण अत्यन्त सुन्दर हो गया है।) फिर उषाकालीन अरुण सूर्य का तो भला क्या कहना ? सेव की लालिमा के कारण ही उसकी सरसता

एवं कोमलता प्रकट होती है। उस नवयुवती के कपोल भी सेव के समान कोमल एवं सरस थे। लज्जा और संकोच के कारण ही वह पानी-पानी हो रही थी। वह अपने हृदय के भाव को छिपाने की चेष्टा करती थी। उसके लिए समय बोझ-सा लगने लगा, समय का काटना उसके लिए दूभर हो गया। इसलिए वह समय के भार से मुक्त होने केलिए अपने पाँवों के नखों से जमीन खुरच रही थी। वह अपने उन स्पन्दनहीन चरणों की ढिठाई को छिपाने के लिए ही मानो जमीन खुरच रही थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि का संकेत अत्यन्त स्वाभाविक है।

अब न केवल कोकिलों …… पुनः उन्मत्त हो! (पृ० १८)

कवि कहता [illegible] कोकिलों [illegible], [illegible] या [illegible] [illegible] हो उठा। [illegible] उनका [illegible] का [illegible] के मधुर स्वर को सुनने की अभिलाषा [illegible], पर अब उनके साथ [illegible] जीवन व्यतीत करने की लालसा उत्पन्न हो उठी। [illegible] प्रत्येक पल व्यग्र बना रही थी। प्रेमियों का हृदय रेशम के कोए के समान होता है। जिस प्रकार रेशम का कोआ सहज ही दब जाता है और फिर फूल जाता है उसी प्रकार प्रेमियों का कमल-सा कोमल हृदय भी सौन्दर्य के सुकोमल हाथों का स्पर्श पाकर दब जाता है और फिर प्रेम के कारण मतवाला हो फूल उठता है। उस समय प्रेमी पागलपन का अनुभव करने लगता है। सौन्दर्य प्रेमियों के हृदय को अपनी ओर आकृष्ट करता है और प्रेम के कारण उनका हृदय फूल उठता है।

रसिक वाचक! कामनाओं……हृदय को साथ ला? (पृ० १९)

रसिक पाठकों को सम्बोधित कर कवि कहता है कि इस धरती पर कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो प्रेम की संकीर्ण गलियों में जाकर

सकुशल लौटा हो। कहने का भाव यह है कि प्रेम की दुनिया में प्रवेश करनेवाला अपना सर्वस्व खो बैठता है। प्रेम के चक्कर में फँस कर उसका हृदय पराधीन हो जाता है, उसपर उसका कोई नियन्त्रण नहीं रहता। प्रेम-पथ पर कदम उठाकर अनासक्त और निर्विकार हृदय से लौटना आसान नहीं है, यह अत्यन्त कठिन कार्य है। हृदय उसमे जाकर अटक जाता है। प्रेम के मार्ग मे अनेक कठिनाइयाँ होती हैं। इस मार्ग पर विचरण करनेवाला व्यक्ति कभी भी सुख एवं शान्ति का अनुभव नहीं करता। प्रेम मे किसीसे कुछ लेना नहीं रहता है प्रत्युत् देना होता है। इस मार्ग में कृपणता इसलिए है कि प्रेम का प्रतिदान अत्यन्त कठिनता से प्राप्त हो पाता है।

एक प्रातः स्वर्ण कर·······सुख से फूल कर (पृष्ठ १६)

प्रस्तुत पक्तियो में कवि पंत ने प्रातःकालीन नैसर्गिक सुषमा का वर्णन किया है। उसने बतलाया है कि प्रातःकाल का समय था। सूर्य की सुनहली किरणे आनन्दमग्न हो समस्त दिशाओ मे फैल रही थी। वे किरणे भी अपने परिचित मुख (यानी उस बालिका के मुख मण्डल पर) से प्रसन्न भाव से खेल कर रही थी (अर्थात् पड़ रही थीं)। उस बालिका के कान में कर्णमुक्ता नामक आभूषण था जो सूर्य की किरणों के पड़ने से ओस की उजली बूंदो के समान चमक उठी थी और उसका प्रतिबिब बालिका के कोमल कपोलो पर पड़ रहा था। कवि की प्रियतमा खिड़की के निकट बैठकर समुत्सुक दृष्टि से उद्यान (बाग) की ओर देख रही थी। वस्तुतः उसकी दृष्टि उत्सुकता से किसी को खोज-सी रही थी। उस उद्यान की समस्त कलियाँ विकसित हो चुकी थी और आनन्दमग्न होकर भ्रमर खिली कलियो से मधुर स्वर मे कुशल समाचार पूछ रहे थे।

इन पंक्तियो मे कवि ने मानवी भावो का आरोप किया है तथा 'उत्सुक नयन' मे विशेषण-विपर्यय है।

भौंरा मालिन की तरल ....पीन यौवन भार से । (पृष्ठ १७)

कवि एक भ्रमर की दशा को अभिव्यक्त कर अपनी परिस्थिति की ओर संकेत करता है। वह कहता है कि एक भ्रमर अत्यन्त प्रेम से फूल की डाली पर बैठ कर रसपान कर रहा था और इसी बीच मालिन जल सींचन को आई। उसके जलधार से भ्रमर के पंख भीग गए और वह (भ्रमर) फूल की जड़ के पास जा गिरा। इस प्रकार उसकी समस्त कामनाएँ धूल में मिल गई। पर आशा का सबल पकड़े वह फिर उठा। अपने पंखों को पोछ कर वह उड़ने के लिए व्यग्र हो उठा। इस प्रकार कवि पंत ने अपनी ओर संकेत किया है। कवि भी तो उस भ्रमर के समान फूल-सी कोमल बालिका के प्रेम-रस का पान कर रहा था पर सामाजिक रूढ़ियों, बन्धनों एवं बाधाओं ने उसे विलग कर दिया किन्तु कवि उससे फिर मिलने के लिए व्यग्र है। यों तो उस बालिका ने वातायन के निकट बैठकर उद्यान में भ्रमर का आशा-खण्डित रूप देखा है परन्तु इशारा कवि की ओर है।

आगे की चार पंक्तियों में कवि ने वासन्ती वायु को मानिनी नायिका के समान अंकित किया है। (बसंत ऋतु का प्रातःकाल था)। वासन्ती हवा धीरे-धीरे बह रही थी और उसके स्पर्श से उद्यान की लतिकाएँ झूमकर झुक जाती थीं। उन लतिकाओं का हिलना-डोलना तरल तिरछी पाँती के समान था। वह उसी प्रकार झुक-झूम रही थीं जिस प्रकार मानिनी स्त्री पूर्ण यौवन-भार से सौन्दर्य की चंचल उमंगों में इतराती और इठलाती चलती है।

तूल-सी मार्जार बाला ....परिहास निरता, दोलिता (पृष्ठ १७)

कवि की प्रियतमा उद्यान की ओर देख रही थी। वहाँ रुई-सदृश मार्जार बाला (बिल्ली) अपनी बाल-क्रीड़ा में निमग्न थी, वह कभी उछलती थी और कभी भय से दुबक कर देखती थी। वह पीछे की ओर फिर-फिर घूमती थी। इसी बीच मधुर-मद मुस्कान बिखेरती अपनी चंचल भौंहों की लहरों में हृदय को प्रतिपल डुबाती हुई कवि की प्रियतमा की

कई सगिनी-सखियाँ भी आयीं। उनमें से कुछ हँस रही थीं, कुछ परिहास कर रही थीं। वे सभी सखियां झूमती-झमकती (उद्यान मे) आयी थी।

देख कर अपनी सखी को ...... चपल नयनों के लिए। (पृष्ठ १८)

उन संगिनी-सखियों मे एक ने उस बालिका को ध्यानमग्ना देखकर उसकी ओर इशारा करती हुई अपनी (उम्र मे) बड़ी सखी से धीरे से कहा—हे सखी! उस ओर जरा देखो न! (वह बालिका अर्थात् उसकी सखी) हंसिनी के समान नवकमल वन मे प्रेम के स्वप्न को देखने में निमग्न है। फिर दूसरी सखी ने मार्जार बाला (बिल्ली) को सकेत कर कहा – युवतियो के मुग्ध, तिरछे एव चंचल नयनो के लिए बिल्ली की बाल्य-क्रीड़ा में क्या रखा है? कवि के कहने का तात्पर्य्य यह है कि जब बालिका मे यौवन का समागम होता है तब उसकी दृष्टि मे प्रेम का मधुर राग धीरे-धीरे प्रवेश करता है। जब वे किसी का रूप-सौन्दर्य देखती है तो मोहित हो उठती हैं और वे सदैव उसे ही देखना चाहती हैं। वस्तुतः उस बालिका (कवि की प्रियतमा) को मार्जार-बाला की क्रीड़ा में क्यो आनन्द आने लगा!

प्रथम भय से मीन के .... करने लगे हैं भ्रमर को। (पृष्ठ १८)

प्रस्तुत काव्य-संदर्भ में कवि ने यौवन की मादकता एवं चचलता की ओर सकेत किया है। कवि ने बचपन की आँखो की तुलना मछली के लघु-बाल से की है। (बचपन की आँखे भोली-भाली है)। उस समय उसकी आँखे किसी के रूप-सौन्दर्य की ओर आकृष्ट नहीं होती है पर ज्योंही यौवन का समागम होता है त्योंही किसी के रूप-सौन्दय का रस-पान करने के लिए वे व्यग्र हो उठती है।)

कवि तुलना करते हुए बतलाता है कि जिस प्रकार मछली के लघु-बाल भय के कारण गहन जल मे छिपे रहते हैं और बाल के बढ़ने पर जल के ऊपर आकर तरगो के सग क्रीड़ा करने की कामना उन मछलियो को व्यग्र करने लगती है, उसी प्रकार जो आँखे पहले संकोच के कारण

छिपी रहती वे ही युवावस्था में अपने प्रियतम के रूप-सौन्दर्य के दर्शन के लिए व्याकुल हो उठती हैं। आगे चलकर कवि ने उन आँखो को खंजन की संज्ञा से विभूषित किया है तथा कमल तो मुख है ही। कमल रूपी मुख-मण्डल पर खंजन रूपी दो सुन्दर आँखे शान्त बैठी थीं। उसकी आँखो में भोलापन था, विषय-वासना का चांचल्य नहीं। उसकी बाल्य-आँख इधर-उधर नहीं दौड़ती था। यौवन के समागम के कारण उसकी आँखो मे मादकता आ गई है। अब वे खंजन (आँखें) पखो की चपल चोखी चोट करने लगे हैं तथा मधु-प्रेमी भ्रमर को वहाँ पर बैठने नहीं दे रहे है। कहने भाव यह है कि आँखो की चंचलता में प्रेमियो की आँखे उलझी रह जाती है। प्रेमी अपनी प्रेयसी के सुन्दर मुख को देखना चाहता है, उसके अधरामृत का पान करना चाहता है परन्तु प्रेयसी की चपल आँखे उसे वैसा नही करने देती तथा प्रेमी उसकी चचल चितवन से चोट खाकर रह जाता है। इसमे प्रस्तुत के स्थान पर अप्रस्तुत का वर्णन किया गया है।

संकुचित थीं प्रात जो नव ·····निज सुरा की कांति से। (पृ० १८)

प्रातःकाल के समय उद्यान की क्यारियो मे फूलों की पंखुड़ियाँ वन्द रहती है और दोपहर मे सूर्य की ज्योति से वे खुल जाती हैं अर्थात् विकसित हो उठती हैं। इस सदर्भ में कवि पत ने वतलाया है कि उस वालिका की आँखे भी शैशव मे कली के समान थीं परन्तु अब तो प्रेम की किरणों से उसकी आँखे चमक उठी है। उसके मादक सौन्दर्य से दर्शकों की आँखे उन्मत्त हो उठी है।

'सुरा की कांति से' कवि का भाव यह है कि प्रियतमा की आँखे प्रेम के नशे से चूर है तथा उसके सौन्दर्य मे मादकता-सचार की शक्ति निहित है। उसकी आँखे प्रेम के कारण उन्मत्त हो चली हैं।

सहस सखियों के निठुर आक्षेप ·· है सतत भटकती नहीं? (पृ० १९)

सखियां उद्यान में है और उनके तीखे आक्षेप के भय से उस बालिका ने अपने हृदय के भावों को समेट लिया तथा अपनी सुन्दर

भवो को सिकुड़ा लिया। तदुपरान्त आश्चर्यचकित हो मृगी के समान उसने आँखो को फेर कर अपनी दशा को छिपाने की चेष्टा की। यौवन आते ही सुन्दरियाँ चतुर हो जाती हैं। वे युवावस्था मे नैपुण्य के साथ अपने हृदय के भावो को छिपा लेती हैं, इसलिए उनका हृदय रहस्यमय वन जाता है। वे स्वयं को इतना रहस्यमय वना लेती हैं कि कोई भी उनके हृदय के भावो को अच्छी तरह नहीं पढ़ सकता। तात्पर्य यह है कि युवतियों का हृदय किसे उधेड़-वुन में नहीं रखता।

सजनि ! आज विलम्ब-सा ·····सुछवि से, सुरभि से। (पृ० १९)

वालिका अपने हृदय के भावो को छिपाती हुई कहती है कि हे सखि। आज तुम लोग देर से आयीं, उसका क्या कारण है? क्या हमारी मधुकरी (मधुकरी-भ्रमरी के समान प्रेमरस पान करनेवाली सखियाँ) किसी नए नलिन (कमल) की गोद में तो नहीं वँध गयी थीं? क्या हमारी सहेलियाँ किसी के मधु से, सुन्दर रूप से, सौरभ से (प्रेम पर) मुग्ध हो गई थीं? यह ज्ञात है कि भ्रमर सध्या समय कमल की पंखुड़ियों मे वँध जाता है और प्रातःकाल उसके खिलने पर निकलता है। अतएव वालिका के मुख से कवि ने यह कहलवाया है कि उसकी सखियाँ अपने प्रियतम के प्रेम-पाश में वँधी थीं, इसीलिए देर कर आयीं।

कुंज के या कुटिल काँटों से कहीं···सी सरस मृदुभाषिणी। (पृ० २०)

वालिका कहती है कि यदि उक्त वातें सत्य नहीं हैं तो हो सकता है कि विहंगिनी (उसकी सखियाँ) उपवन के कुटिल काँटो से विध गई हो। या उसकी सरल हृदयवाली शफरी (सौरी मछली जिससे सखियो की ओर सकेत है) फूल के सदृश प्रेम के तरल जाल मे (अलक के-से जाल में) तो नहीं फँस गई थीं? सध्याकालीन नए वादलों में सूर्य की किरणों के रहने से जो सौन्दर्य फूटता है, उसी प्रकार का सौन्दर्य उस वालिका के मुख पर झलक रहा था, उसके मुख से रस छलक पड़ता था। वह अत्यन्त मृदुभाषिणी थी। कवि की प्रियतमा की वातो को सुनकर वह सखी सजल वादलों के सदृश मन्द स्वर मे वोल उठी।

एक दिन संध्या समय..... ...को दे रही उपहार है।(पृ० २०)

सजल बादलों के मन्द गंभीर स्वर में उस सखी ने कहा— हे सखी! एक दिन संध्या समय मैंने अत्यन्त ही विचित्र दृश्य देखा और वह अत्यन्त ही आनन्दप्रद था। मैंने देखा कि सरोवर के जल में कमलिनी (मरालिनी) का बिम्ब देखकर एक भ्रमर उसका रसपान करने के लिए जल में कूद गया। वस्तुतः प्रेम की अद्‌भुत शक्ति है। भले ही उसके प्रेम का बंधन पतले धागे का हो फिर भी वह तोड़ा नहीं जा सकता। इसकी पुष्टि के लिए उदाहरण देती हुई कहती है— देखो न, किस प्रकार एक मृदुल कमलिनी अपने कृश (पतले) सूत्र (धागे) से एक मस्त तरुण हाथी को बांध देती है और प्रेम-पाश में आबद्ध होने के कारण ही तो मरालिनी अपने प्रिय हंस को उपहार देने के लिए मोतियों की माला बनाती है।

'मरालिनी' शब्द अशुद्ध है, उसका शुद्ध रूप है 'मराली', जो 'मराल' का स्त्रीलिंग रूप है।

देखता है निर्निमेष नयन............के हृदय-सा। (पृ० २१)

और फिर वह कहती है कि प्रेम के वशीभूत होकर ही तो चकोर [illegible] निर्निमेष दृष्टि से देखता रहता है। इस उक्ति को सुनते ही एक [illegible] बोली—हे सखी! अभी-अभी तुमने जिस सुन्दर दृश्य की चर्चा [illegible] बनाया है, उसने उस हंसिनी के हृदय के सदृश [illegible] लिया है, मोह लिया है जिसके फलस्वरूप [illegible] का ज्ञान न रहा।

याद आती है मुझे अपनी............पर भी हैं रुके। (पृ० २१)

[illegible] सखी कहती है कि इस सिलसिले में मुझे [illegible] है। मैं बहुत दिनों से अपने हृदय पर [illegible] जिस प्रेम को गुप्त रूप से पालता रहा, वह [illegible] अब प्रकट होना चाहता है। मेरे मानस के [illegible] अग्नि नहीं हो रहा है बल्कि उस प्रेम

का सिर्फ अनुभव ही शेष बच गया है। मेरी समझ में यह बात नहीं आ रही है कि उस प्रेम के अनुभव को कैसे और किन शब्दों में अभिव्यक्त करूँ। अतएव मेरा मौन ही मुखर अभिव्यक्ति है। अब तो मेरा सत्प्रेम इतना विस्मृत हो गया है कि उसके सौन्दर्य की एक धुँधली तस्वीर भी नहीं उतर पा रही है। मैंने सिर्फ प्रेम का अनुभव किया था, वही याद है तथा उसकी वेदना अब तक नहीं मिट पाई है। जिस प्रेम को मैं अब तक हृदय में गुप्त रूप से संजोती आयी हूँ, उस खोजने में, ढूढने में न जाने मेरी आँखे कहाँ-कहाँ नहीं टकरायीं। वह कहती है कि मैंने अनेक बार हवा से विस्मित गूढ़ छाया और जल के ऊपर पड़े छोटे-छोटे बिम्बों में अपनी आँखो को डुबोया तथा कविता के पूर्व वर्गो पर भी ध्यान दिया है। उसके कहने का भाव यह है कि जहाँ कहीं भी सौन्दर्य का आभास पाया, वहीं जाकर उसे प्राप्त करने की चेष्टा की लेकिन कही भी उसे संतोष नही प्राप्त हुआ। अंतिम चार पंक्तियों में भाव-विदग्धता के साथ-साथ लाक्षणिकता भी है।

स्तब्ध रजनी में डरे·····की व्यथा को खोजने। (पृ० २२)

तीसरी सखी कहती है कि मैंने अनेक सुनसान रातें रो-रोकर व्यतीत की हैं और मुझे निस्तब्ध रात्रि में भयभीत तारेगण विस्मित-सी दीख पड़ते हैं। प्रेम की अग्नि में जलनेवाली प्रियतमा ने उनसे प्रतिस्पर्द्धा का भाव रक्खा है और प्रातः के ओसबूँदो को अपनी सजल पलको से लगाया है। कहने का तात्पर्य यह है कि मेरी पलकों से अनगिनत अश्रुकण ओसबूँदो के समान गिर पड़े हैं। सध्या समय बालिका की आँखें विहग-बाला (चातकी) की वेदना की खोज में अनेक बार आकाश में चक्कर लगा चुकी हैं। विहग-बाला अर्थात् चातकी ओस-कण के लिये व्यग्र रहती है और शरद् ऋतु मे आकाश बादल से तो आच्छादित हो उठता है किन्तु उससे वर्षा नही हो पाती है जिसके फलस्वरूप चातकी की आशा-लतिका मुरझा जाती है। वह निराश हो उठती है। बालिका को यह अनुभव होता है कि उसकी वेदना के

समान ही चातकी की वेदना भी अत्यन्त ही दारुण है, इसलिये दया एवं सहानुभूति की भावनाओ से अभिभूत होकर वह शून्य आकाश की ओर देखती है। कवि ने लिखा है कि 'लीन भी हैं हो चुके आकाश में' जिसका सम्बन्ध बालिका की नैराश्य-भावना मे है और इसीलिये वह आकाश की ओर टकटकी लगाकर अपना समय व्यतीत कर रही है।

यह नही, जल वीचियों में··· ·उच्छ्वास से, अपनाव से। (पृ०२२)

वह अपनी सखी को सम्बोधित करती हुई कहती है कि मेरी इन आँखो ने जल-तरगो मे चन्द्रमा को हँसते हुये भी देखा है। कुमुदिनी चंद्रमा के प्रकाश में खिलती है, फूलती है। लेकिन इन आँखो ने चाँदनी को छीनकर कुमुदिनी को खिलने भी नही दिया है। इसके कहने का तात्पर्य यह है कि ये आँखे शशिकला के समान अत्यन्त सुन्दर एवं चमकीले थे। वे अपने रूप-सौंदर्य पर अभिमान करते थे, इठलाते थे लेकिन जबसे इन आँखो ने मोती के समान चमकनेवाले रूप का दर्शन किया है तब से इन्हे शांति नहीं मिली है। उसके प्रत्यक्षीकरण के लिये, उसे देखने के लिये ये आँखे कभी आँसुओ की धारा बहाती हैं तो कभी उच्छ्वास निकालती हैं। ये आखे उससे ऐसी मिली हैं, मानो वह कोई इनका अपना आदमी हो। इनकी वेदना का मूल कारण यह है कि इन्होने उसे अपने हृदय मे समा लिया है, बसा लिया है।

सजनि ! पतले पत्र से·····सगुन-सा, स्वप्न-सा। (पृ० २३)

वह कहती है कि हे सखी। एक दिन की घटना है कि आकाश में पतले पत्रो के समान अकित बादल छाये हुये थे, परन्तु उससे वृष्टि होने की कोई आशा नही थी। उत समय मद गति से हवा प्रवाहित हो रही थी और मेरा आँचल वायु के स्पर्श से डोल रहा था। मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि मैं वायु की गति से निःसृत गीत को अपने आँचल मे भर रही हूँ, सजो रही हूँ अर्थात् मै अत्यन्त उल्लास का अनुभव कर रही थी। उस वातावरण मे हृदय में स्थित वेदना को जाग्रत की अनुपम शक्ति निहित थी। उस समय अनायास ही मेरी आँखो से अश्रुधारा

उमड़कर प्रवाहित होने लगी। इन पंक्तियों में कवि ने आँसू का अत्यन्त ही मार्मिक चित्र अंकित किया है। उस समय का वातावरण उद्दीपन-कारी था तथा ऐसे वातावरण में प्रिय-स्मृति से आँखें डबडबा ही जाती हैं और यह अनुभव नहीं हो पाता कि इन आँखों में अश्रु कब और कैसे उमड़ पड़ा है। अश्रुकण को कवि ने 'जलद शिशु' कहा है जो पवित्र प्रेम का प्रतीक है। अंतिम दो पंक्तियों में कवि बतलाता है कि ये अश्रुकण अत्यन्त सुकुमार, मधुर, उद्विग्न, तन्मय, विह्वल तथा रंगीन थे। वस्तुतः पंत कोमल कल्पना का गायक है, इसीलिए उसने इसमें आँसू का अत्यन्त ही भावपूर्ण मनोहर चित्र अंकित किया है।

सुन चुकी हूँ विहग-बाला के ... श्रवण हूँ कर चुकी। (पृ० २२)

सुबह होने पर पक्षिगण चहकने लगते हैं और कमल खिल पड़ते हैं। वह प्रातःकाल के सूर्योदय के स्वर्णिम प्रकाश में विहग-बालाओं का चहचहाना सुन चुकी है तथा कमलों की अधखुली लालिमामय सजल आँखें भी देख पायी है। कहने का तात्पर्य यह है कि वह प्रकृति के उपादानों में भी अपनी वेदना की छाया देखती है। सखी कहती है कि प्रेम में तड़पना स्वाभाविक है, वियोग उसका सहज गुण है। उसने तो तृषित चातक को तड़पता देखकर अच्छी तरह यह अनुभव कर लिया है कि स्वाति-जल का स्वाद कैसा होता है तथा सरल स्वभाव के उड़ते बुलबुलों को पकड़कर उसके करुण क्रंदन को भी भली-भाँति सुन लिया है। अतः प्रेम की व्यग्रता क्या है, इससे वह पूर्णतया परिचित हो चुकी है। कवि ने इस संदर्भ में इसी भाव को वाणी दी है।

प्रस्तुत काव्यखंड में कवि ने यह बतलाया है कि प्रकृति में भी सभी वेदना-विह्वल हैं, किसी को भी आत्मिक तृप्ति नहीं है, सभी किसी-न-किसी रूप में दुःखी हैं। इसकी तृतीय और चतुर्थ पंक्ति में रूपक अलंकार है क्योंकि प्रातकालीन विकसित कमल में उषा की अधखुली लालिमामय सजल आँखों का आरोप किया गया है। 'रंगे गीत' में माधुर्य एवं "सजल आँखों" में कारुण्य का भाव अन्तर्निहित है।

देख इन्द्रधनुष अनेकों ....खोजती लघु-ज्योति में। (पृ० २४)

आकाश के इन्द्रधनुष को देखकर मै अनेक वार अपनी सुध-बुध खो चुकी हूँ और दोनों भौंहे मटका चुकी हूँ। भौंहे मटकाने के समय वह सेतु का रूप ग्रहण कर लेती है। इतना ही नहीं, केले के थम्भो को थिरकता देखकर मै भी केतु-सा (ध्वजा-सा, पुच्छल तारा) एकान्त मे नाच चुकी हूँ। हे सखी। वर्षा ऋतु की अन्धेरी रात में जुगनुओं को पकड कर अपनी हथेली पर रख उनको खोजती और इनकी लघु-ज्योति (यानी जुगनुओ की ज्योति मे) में अपनी नियति की रेखा को मै पढ़ चुकी हूँ। कहने का भाव यह है कि वर्षा की अन्धेरी रात में मैं जुगनुओं के प्रकाश मे अपने प्रियतम को खोजती, पर इस अधकार मे मेरा खोया प्रियतम नहीं मिलता। अतएव मैंने यह अनुभव किया कि मेरे प्रिय अब नहीं मिलेगे।

सुरसरी को प्रथम जिस ..... मिला चुकी हूँ, ओस से। (पृ० २४)

इस काव्यसदर्भ मे कवि ने उनकी दशा और प्रकृति की दशा में साम्य दिखलाने का प्रयत्न किया है। जिस जल की बूँद ने सुरसरी (गगा) को सागर का मार्ग बतलाया था अर्थात् प्रिय मिलन का मार्ग बतलाया, मै भी उसी मार्ग की खोज मे (प्रियमिलन के लिए) मोम-सा कोमल आँसू बहा चुकी हूँ। मेरी आँखो से सदा प्रियमिलन की आकाक्षा के कारण अश्रु की धारा प्रवाहित होती रही। पृथ्वी पर हरी घास उग कर छा जाती है और सुबह मे उनपर पड़े ओसकण उनके आँसू हैं। हे बहन। मेरी भी दशा ओस से पूर्ण घासों के समान है। मैं अपने प्रिय की खोज मे समस्त ससार छान चुकी हूँ तथा खूब आँसू बहा चुकी हूँ।

दीप नीचे, म्लान मूर्च्छित तिमिर.. .. लगा चुकी हूँ हृदय से। (पृ० २५)

प्रेम की अन्तिम परिणति मृत्यु है, इस सत्य को दृष्टिपथ मे रखकर वह कहती है कि हे सखी! पतग दीपशिखा से प्रेम करते हैं। वे

दीप की लौ का आलिंगन करते हैं और जलकर वही गिर पड़ते हैं। दीप स्वयं जलता है, पर उसके नीचे घना अंधकार रहता है और वे पतगे ग्लान-मूर्च्छित होकर इस अधकार के करुण अचल में छिप जाते हैं। उसमे दग्ध शलभो की मौन वेदना है। उसे देखकर मेरे हृदय की सुप्त वेदना जाग पड़ती है और मेरी आँखो से अश्रु की अविरल धारा बहने लग जाती है। वह एक विरहिणी है, उसे इसकी अनेक बार कल्पना करनी पड़ी है। पतझड़ के पीले पत्ते को देखकर उसका हृदय द्रवीभूत हो जाता है। वह उसे भी विरहिणी समझती है। उसमे वह अपनी वेदना को देखती है। उसे अपने-जैसा दुःखी मानती है। इसलिए वह उसे बार बार हृदय से लगा लेती है, क्योंकि इससे दोषो को आत्म-सतोष मिलता है।

स्वप्न के सस्मित अधर ·······अपलक नयन के। (पृ० ३९)

एक घटना का उल्लेख करती हुई कहती है कि जिस प्रकार हवा के झोके से सागर की शान्त लहरे चंचल होकर दौड़ने लगती हैं उसी प्रकार एक रात मैं भी नींद से जागकर चचल हो उठी। नीद मे जब मैं मीठा स्वप्न देख रही थी, उस समय मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मेरा प्रियतम मेरा अधर-चुम्बन कर रहा है जिससे मेरे अधरो पर प्रसन्नता की लहरे दौड़ पड़ती हैं। पर इसी बीच मैं उनके गर्म श्वास से चौक पड़ी और मेरा सारा स्वप्न-सुख नष्ट हो गया तथा उस स्वप्न की मिलन-स्मृति की पीड़ा मुझे व्यग्र करने लगी।

हे सखो ! मैं सुखपूर्ण जीवन को दुःखमय होते देख चुकी हूँ। जिस प्रकार चमकते आकाश से तारे टूटकर गिर पड़ते हैं और अंधकार छा जाता है उसी प्रकार चमकते भाग्य मे सहसा अभाग्योदय का दर्शन कर चुकी हूँ। इतना ही नही, मैं यह देख चुकी हूँ कि वियोगावस्था मे प्रमिका का हृदय शान्त हो जाता है, वह एक टक से निहारती रहती है और आँखो से आँसू की धारा प्रवाहित होती रहती है।

अतएव मैं इस तथ्य से पूर्णतया परिचित हो चुकी हूँ कि संयोगावस्था में हृदय कोमल रहता है, पर वियोगावस्था में वह कठोर हो जाता है।

किंतु उस कण को सजल·······की अमित उपकारिणी। (पृ० २६)

वह कहती है कि कुछ ही समय के लिए मेरा प्रियतम से मिलन हुआ, लेकिन उसकी स्मृति मेरे हृदय-पट पर अबतक अंकित है। प्रिय-मिलन स्वर्गीय आनन्द के समान था। प्रिय-मिलन की स्मृति से मेरी आँखों में आँसू उमड़ आते हैं। यों तो प्रियतम के स्पर्श में प्रेम का खुला रूप नहीं था फिर भी वह मेरे लिए अमृत के समान था, अलौकिक था। उनके स्पर्शमात्र से शीघ्र ही मेरे हृदय में प्रेम का भाव जाग्रत हो गया। उनका चचल चित्र बच्चों के भोले मधुर हास के समान अपने हृदय मे उतार चुकी हूँ और उनके चरणों पर चंद्रमा की रश्मियो में अश्रु मुक्ता गूँथ कर चढ़ा भी चुकी हूँ, उनका चित्र हृदय में बैठ चुका है और चाँदनी के उद्दीपन काल मे उसके लिए आँसू बहाती है। जिस प्रकार भौंरे पुष्पों पर मँडराते हैं और 'भन-भन' के स्वर में अपना प्रणय-निवेदन करते हैं उसी प्रकार मैं भी प्रेम का करुण गीत गाती हूँ तथा अपने प्रियतम की अपरिमित उपकृत करनेवाली शक्ति को गंगा की धारा मे ढूँढती हूँ, वह शक्ति ही उसे सागर में मिलाने में समर्थ है। यहाँ पर सुरसरी धारा का अर्थ पवित्र जीवन की गति से है।

सुन प्रणय के इस अनूठे ·· ···लगी यों प्रेम का। (पृ० २३)

अपनी सखी के मुख से प्रेम के अनुपम काव्य कथा) को सुनकर तथा उसे हृदयगम कर पहली सखी ने उसे हृदय से लगा लिया, उसका आलिंगन कर लिया और तव वह उसे यौवन की अनुभूति को तुले स्वर मे समझाने लगी, क्योंकि उसका भी प्रेम का अनुभव नया ही था।

निपट अनभिज्ञा अभी ·· ····· ·प्यार क्या उसने किया ? (पृ० २६)

अपने प्रेम के अनुभव को उसने कहना आरम्भ किया। हे बहन! प्रेम के मामले मे तुम बिलकुल भोली-भाली हो, उसका तुम्हें

कतई ज्ञान नहीं है। तुम व्यर्थ ही प्रेमिका बनने का अभिमान रखती हो। इस संसार में कौन ऐसा व्यक्ति है जिसने सुन्दरियो के समक्ष आत्मसर्म्पण न किया हो? सुन्दरियाँ तो अपने कोमल कटाक्ष से मदमस्त हाथी जैसे व्यक्ति को बाँध लेती हैं। आगे की पक्तियो में कवि ने प्रेमी के लक्षणो पर प्रकाश डाला है। वास्तव मे जिसने बिना सोचे-समझे ही प्रेम के नाम पर अपने को लुटा नही दिया हो, प्रेम की माला ही जपकर रात न काटी हो, और जिसने पगध्वनि से चौक कर अपनी व्यग्र आँखो से उधर न देखा हो उसने भला क्या प्यार किया ?

मंद चलकर, रुक .... क्या उसने किया ? (पृष्ठ २७)

कवि कहता है कि जिसने मन्दगति से चलकर, अनायास रुककर अपनी अधखुली चचल पलको से प्रियतम के हृदय को कभी न गुदगुदाया हो, उसे नवयौवना होने का गर्व नही करना चाहिए।

हास सरिता में .... तुमने मिला दी धूल में। (पृष्ठ २८)

कवि कहता है कि भ्रमर सरोवर के विकसित कमल पर बैठकर उसका रसपान करता है ; वस्तुतः उसके जीवन की सार्थकता भ्रमर को रसपान कराने मे ही है। सच तो यह है कि कमल कभी भी भ्रमर को रसपान के लिए नही बुलाता है। कमल मे अनुपम सौंदर्य है जिसे देखकर भ्रमर उसकी ओर आकृष्ट होता है और उसपर अपने को न्यौछावर करता है।

इस स्थल पर कवि कहता है कि सुन्दरियो के हँसने से उनके कोमल कपोल मे गड्ढा पड़ जाता है, वह खिले हुए कमल के समान मालूम पड़ता है और प्रियतम तो मधुर (भ्रमर) है ही। पत का कवि कहता है कि सुन्दरी के मधुर हास्य से उसके कपोल मे जो गड्ढा हो जाता है, यदि प्रेमी ने भ्रमर के समान अपने मधुर चुंबनो से उसे नहीं भर दिया तो उस नवयुवती के यौवन का महत्व ही क्या ? इसमे 'खिली चम्पाकली' शब्द आया है जिसमे शैशव से यौवन

में आने का भाव गुम्फित है। भ्रमर चम्पा (एक फूल) के पास नहीं जाता है क्योंकि उसकी गंध अत्यन्त तीव्र होती है पर चम्पा अत्यन्त ही सुन्दर फूल होता है। चम्पा के द्वारा कवि ने यह दिखलाने का प्रयास किया है कि उस नवयुवती का अनुपम सौंदर्य सारहीन है जिसकी ओर प्रेमी आकृष्ट नहीं हो पाता। वह सुन्दरी चम्पा के फूल के समान है जिसके सुन्दर रूप पर मोहित होकर भ्रमर-रूपी प्रेमी भी उसके निकट नहीं जाता है।

फिर वह प्रेमिका युवती कहती है कि हे वहन। तुम्हारी बातें सुनकर मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे तुम इतिहास की एक अत्यन्त नीरस कहानी सुना रही हो। वस्तुतः तुमने प्रेम के जो वर्णन किए हैं वे सब इतिवृत्तात्मक घटनाओं के समान निष्प्राण हैं, उनमें वह सरस अनुभूति नहीं है। इसपर उस प्रेमिका ने कहा कि हाय! ऐसी निष्प्राण कहानी सुनकर तुमने भी मेरी प्रेमकथा को धूल में मिला दी। तात्पर्य यह है कि उस कहानी को व्यर्थ समझकर मैंने उस पर कतई ध्यान नहीं दिया।

अनिल कम्पित कमल '' ' ' ' कुमुद की प्रिय कुटिलता। (पृष्ठ २८)

कवि कहता है कि हे रसिक पाठक! वायु कम्पित कमल के सदृश कोमल शरीर को अपने अंक में भर लेने से किसी की अभिलाषा तृप्त नहीं होती। ठीक उसी प्रकार ओस-बूंदों से आच्छादित किसलय-दलों को चूमकर किसके मन की प्यास बुझी है? कहने का तात्पर्य यह है कि कोमलांगों को आलिंगन कर, बाँहों में बाँध कर किसी की आकांक्षा पूरी नहीं हुई है और अश्रुकणों से सिक्त कपोलों को चूमने से भी किसी का मन संतुष्ट नहीं होता। इस प्रकार प्रतिदिन सखियों के बीच प्रेम-चर्चा होती थी और उनकी प्रेम-चर्चा में वह बालिका मधुर मुस्कान के साथ भाग लेती थी। चन्द्रमा की कलाओं से कुमुद की कुटिलता नष्ट हो जाती है अर्थात् उसकी पखुड़ियाँ खिल उठती हैं। वह बालिका सरलता की साक्षात् मूर्ति थी और अपनी

मद मुस्कान से कुमुद की प्रिय कुटिलता दूर कर रही थी। कहने का तात्पय यह है कि सखियो की प्रेम-चर्चा मे हाथ बँटाकर वह अपने हृदय की वेदना को मिटाती थी और कुछ-कुछ वियोग की वेला में भी आनन्द का अनुभव करती थी।

अब इधर मेरी दशा····· अभय छाया मुझे। (पृ० २६)

कवि-प्रिया की दशा से पाठक अवगत हो चुके। अब स्वय कवि का हाल उसके मुख से ही सुनिये। बाल्य-काल मे ही कवि पर से माता की ममता -मयी छाया हट गई। वह माता की गोद से उसी प्रकार अलग हो गया जैसे सुरभिमय सुकोमल फूल से काँटा। दैव दुर्विपाक से अभयदात्री माता के संरक्षण एवं पालन-पोषण से कवि को वचित होना पड़ा। जीवन के उषा काल मे ही कवि निस्सहाय हो गया। स्नेह लाड़ की दुनिया मे कवि के लिए इसे "प्रथम ग्रासे मक्षिका प्रपात" ही समझना चाहिये।

पेटिका दुहरी·····....अनभिज्ञता के अधर पर। (पृ० ३०)

मातृ-विहीन कवि को पिता के प्यार पर ही सन्तोष करना पड़ा। पिता के हृदय से ही माता की ममता उमड़ पड़ी। परन्तु, नियति इसे भी सहन नही कर सकी। केवल पन्द्रह वर्ष की अवस्था में ही कवि ने अपने पिता को भी खो दिया। मामा की शरण लेनी पड़ी। वही विधाता ने कवि के जीवन मे एक अनजान प्रेमिका का समावेश करा दिया। यह आकस्मिक घटना कृपणसे दान दिए जाने के समान थी। जैसे जगन्नियन्ता नवजात शिशु के भोले होठ पर हास्य की रेखाएँ उरेह देता है, वैसे ही कवि के भोलेभाले जीवन मे स्वर्ग की वह कीर्त्ति-बालिका पदार्पण करती है। यह संयोग की ही बात है कि बालिका भी मातृ-पितृ-विहीन है: दो प्रेम-पिपासुओ का आकस्मिक संयोग अद्भुत है।

एक सुखमय ·· गुप्त रहता है कहीं। (पृ० ३०)

स्वर्ग की कीर्त्ति—बालिका को अपने जीवन मे पाकर कवि को

ऐसा लगा, जैसे इसी स्नेह-संसार को समुद्भासित करने के लिए उसे प्रारम्भिक यातनाएँ झेलनी पड़ी। उसे विश्वास हो गया कि कभी-कभी परिस्थितियों की प्रतिकूलता भी भविष्य-निर्माण में सहायक होती है। घोर अंधकार के मूल में ही स्वर्णिम प्रकाश छिपा रहता है जो अवसर पाकर सारे संसार को आलोकित कर देता है। आकाश से चू पड़नेवाले जल-कण भी मुक्ता में परिणत हो जाते हैं, बल्कि वास्तविकता तो यह है कि जो जलकण वारिद-खण्ड-स्खलित नहीं हुआ, वह कभी मुक्ता हो ही नहीं सकता। कवि ने मृत को प्राप्त-सुख-संयोग का पृष्ठाधार माना। आशा की किरणों से वह सुखपूर्ण भविष्य का ताना-बाना बुनने लगा।

हाँ, तरणि थी मग्न ··· सुख के स्वर्ग को। (पृ० २१)

कवि के जीवन में उक्त प्रेमिका के आने का प्रसंग इस प्रकार है। एक दिन जब सूर्य पश्चिम समुद्र में डूबा जा रहा था उसी समय नौका-विहार में संलग्न कवि की डोंगी भी डूब गई। डोंगी के साथ ही कवि का डूबना सार्थक इसलिए हो गया कि एक अनजान रमणी ने न केवल उसके प्राण बचाए बल्कि उसके रीते हृदय में प्रेम-पयस्विनी की अजस्र धारा भी बहा दी। इसीलिए कवि ने 'तरणि' का 'मग्न' होने को '(नरस मोती के लिये ही)' कहा है। कवि की छाती आनन्द से फूल उठी। उसका दम फूलना (पानी में डूबने के कारण) उसके लिए वरदान हो गया। इस अयाचित वरदान से कवि को आश्चर्य भी कम न हुआ। उस कोमलांगी की सेवा ने कवि को मुग्ध कर दिया। वह आनन्द-विस्मृत हो गया। सेवा-सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति ने कवि को अनायास ही आकृष्ट कर लिया। इस आकर्षण से कवि को स्वर्ग-सुख सुलभ हुआ। रमणी के सौन्दर्यावेष्टित एवं सुविकसित अंगों के स्पर्श से तो कवि और भी अधीर हो उठा।

बाल्य की विस्मय भरी ··· लगा था प्रति दिवस। (पृ० २१)

कवि की आँखों से बाल-सुलभ विस्मय विदा हो गया और वे

कल्पना की मधुर दृश्यावलियों स अस्त-व्यस्त हो उठों। कल्पना के चिलमन से निकल कर रूप-रस-लोभी ये आँखें 'सुकुमार कलिका'—अनिन्द्य सुन्दरी के इर्द-गिर्द चक्कर काटने लगीं। युवती के चंचल नयनो के वीच मानो सौन्दर्य-सागर लहरा रहा था। हृदय में प्रेम की मादकता उमड़ पड़ती थी। कवि युवती की गोद में लेटकर प्रेम-पुलक-स्पर्श पाने को व्याकुल रहने लगा। नित्य प्रति कवि की प्रेम-पिपासा बढ़ती गई- बढ़ती गई।

दृष्टि पथ में दूर ....ले जाता उड़ा। (पृ० ३२)

रूप-तृषा-सतप्त कवि के नेत्र वेचैन रहते। तृप्ति के लिए जितनी दूर भी दौड़ लगाते, मरीचिका आगे-आगे बढ़ती जाती। लक्ष्य कठिन-साध्य होने के कारण आशा ठीक शरद-कालीन मेघ-खण्ड के समान निरन्तर रूप परिवर्तित करती जा रही है, परन्तु धरती आसमान के कुलावे एक करने से कभी हार भी नहीं मानती। उधर सर्वाङ्गीन सुन्दरी के अनिन्द्य सौन्दर्य पर उसका नव यौवन उतनी ही मादकता बिखेर रहा है जितनी फेनिल सुरा। रमणी का सौन्दर्य तो चाँदनी के समान शीतल, स्निग्ध एवं आह्लादक है परन्तु उसका नव यौवन है फेनिल सुरा के समान प्राणोत्तेजक। भला, यौवन-सौन्दर्य का यह अपूर्व सयोग-वायु हृदय-वारिद को कल्पना को सूक्ष्मतम किनारे तक क्यों न ले जाए। कवि का अन्तस्तल उद्वेलित हो उठा है।

× × × ×

प्रात सा जो दृश्य ....थुप थुपों से सो गया! (पृ० ३२)

जिस प्रकार नवोदित सूर्य से दिगदिगन्त आलोकित हो जाता है, उसी प्रकार कवि का जीवन भी अपरिचिता के आकस्मिक एवं क्षणिक सानिध्य से प्रेमोद्भासित हो उठा था। परन्तु, शोक स्वर्ण-स्नेह-विहान का पर्यवसान भी विछोह-सध्या में हो गया। जिस प्रकार कमल-कोष से ओस-कण मधुर मंथर वायु-संघात से नीचे चू पड़ते हैं उसी प्रकार कवि का सम्पूर्ण स्नेह-स्वप्न अश्रु-कण के समान अचानक ही उसकी

पलकों को भिगोते हुए धूलिसात् हो गया। कवि-प्रिया कवि की नहीं हो सकी।

वह स्पृहा जो ऊर्मि ....विधि ने गढ़ा ? (पृ० ३३)

पूर्णचन्द्र से जिस प्रकार शान्त सागर का हृदय विक्षुब्ध हो ज्वार के माध्यम से ऊँचा उठकर अपना सर्वस्व अर्पित करने को आतुर रहता है, परन्तु शीघ्र ही नियति-चक्र से कुचल दिया जाता है—ज्वार के बाद भाटा आता है—उसी प्रकार कवि की इच्छा-वीचि चन्द्र-मुखी सुन्दरी के पास बहुत देर तक प्रेम-सदेशा भी नहीं भेजने पायी कि क्रूर नियति ने उसे अपने कठोर पैरों तले कुचल डाला। होनी निडर है। न जाने किस प्रलय एवं संहार के गहनतम अन्धकार के गर्भ से इसका जन्म हुआ है। क्या विधाता ने इसके हृदय का निर्माण झंझावात, उल्का, वज्र तथा भूकम्प के प्रलयंकर तत्वों से किया है ?

तू सरल कोमल कुसुम ....मरीचिका तेरी सदा। (पृ० ३३)

कवि होनी (भवितव्यता) को कोस रहा है। वह कहता है कि न जाने सुख-पुष्प की कोमल पंखुड़ियों में दुःख-कंटक के समान वह छिप कर कहाँ बैठी रहती है। इसे कोई पहले देख तक नहीं पाता। किसी को यह तनिक भी अनुमान नहीं हो पाता कि कब और कहाँ शान्त सुस्थिर आकाश-मंडल को अपने छिपे तूफान से आन्दोलित कर देगी। यह मोहक पिशाचिनी है। इसने कितनों के प्राण, कितनों की अभीप्सित कामनाएँ अपहृत कर ली हैं। हेम-मृग के प्रलोभन में डालकर इसने कितनों को छला है। इसकी मोहिनी मरीचिका से मुग्ध एवं आकृष्ट होकर कितने ही सदा-सर्वदा के लिए पथ-भ्रष्ट हो भटकते रहते हैं। भवितव्यता मोहक है रूप से और पिशाचिनी कर्त्तव्य से।

× × × ×

हाय ; मेरे सामने ही ...... तुम ने पुनः ? (पृ० ३४)

कवि की आँखों के सामने ही उसकी प्रणयिनी (प्रेमिका के भाँवर

किसी दूसरे व्यक्ति के साथ फिर गए, गठ-बन्धन हो गया, इससे कवि के कोमल हृदय के सहस्र टुकड़े हो गए।

कवि भ्रमर के समान अपनी प्रेमिका के रूप-सौन्दर्य रूपी नव विकसित कमल के इर्द-गिर्द मंडराता था, अब वही कमल किसी दूसरे का हो कर अन्यत्र सरोवर की शोभा बन गया। कवि का मानस (सरोवर—कवि का हृदय) सूना हो गया। कवि कहता है कि यदि उसे (प्रेमिका) किसी और का होना ही था, तो उसने भूल से जो कवि का हृदय अपने मधूक पुष्प के समान कोमल हथेलियों में ग्रहण कर लिया था उसे फिर कवि को ही लौटा क्यों न दिया? किसी की विवाहिता पत्नी कवि-हृदय की स्वामिनी है, यह कवि के लिए एक बड़े असमंजस का विषय हो गया।

प्रणय की पतली ......उद्भ्रांत हो। (पृष्ठ ३४)

कवि को ऐसा प्रतीत होता है मानो विधाता ने स्नेहाविल सुकोमल परन्तु कृश अंगुलियों की रचना मधुर संगीत के सूक्ष्म तत्वों से की है। शायद इसीलिए उनकी स्मृति मात्र से ही हृदय करुणा-विगलित हो उठता है तथा विस्मृति एवं मुग्धता की अवस्था आवृत कर लेती है। कवि को ब्याह के दिन की वह जड़ घटना आज भी याद है जब वह विक्षिप्त-सा निर्जन स्थान में खूब रोया था। आँखों से आंसू की लड़ियां तारों के समान टूट पड़ी थीं। उस दिन वह कितना दुःखी था।

हाय रे मानव-हृदय अनमोल है। (पृष्ठ ३९)

विचित्र है मानव-हृदय की रचना! न जाने किस धातु से, किन मशालों से यह बना है। कभी तो वज्र से भी अधिक कठोर और कभी तिल-पुष्प से भी कोमल और नाजुक। कवि का विश्वास है कि सच्चा आनन्द दो हृदयों के मधुर मिलन में ही छिपा हुआ है। दो हृदयों के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध में जो नैसर्गिक एवं सांसारिक कल्याणमयी-मंगलदा अभिलाषा है, जो प्राणों को आनन्दोन्मत्त करने की क्षमता है, उसकी

तुलना ससार के किसी धन से नहीं की जा सकती। वह अद्वितीय है और अनमोल है।

शैवलिनि ! जाओ ……… डुबा दे आँख-सी। (पृष्ठ ३५)

कवि अपनी करुणा-गाथा से किसी को प्रभावित नही करना चाहता। वह ससार के कार्यक्रम से व्यतिरेक भी उपस्थित नही करना चाहता है। इसीलिये कहता है—नदियो। तुम अपने प्रियतम समुद्र से जा मिलो, अभिसार करो। वायु। तुम शून्य को आलिंगन-पाश में वाँध लो। चाँदनी। तुम भी सागर की तरंगो का चुम्वन करो और तारागणो ! तुम भी वायु वीणा वजा कर आनन्द से गाओ। कवि सव को आनन्दोल्लास मनाने का आदेश दे स्वय अपने हृदय को सम्वोधित कर कह रहा है कि आज वह (कवि का हृदय) अकिंचन है, रिक्त है इसलिए कहीं सुनसान—निर्जन में जा कर आठ-आठ आँसू रोए क्योकि उसकी कामनाएं, उसका भविष्य चकना-चूर हो चुका है। वह दूसरो के हाथों का सौदा हो चुका है। कवि-हृदय को ऐसी अवस्था में आँखों के समान आँसू मे डूव जाने के सिवा और चारा ही क्या है।

देख रोता है चकोर ……… न वहलाओ हृदय। (पृष्ठ ३६)

कवि स्वयं दुःखी है और इसीलिए उसे एक ओर चकोर रोता दिखाई पड़ता है तो दूसरी ओर चातक पानी के एक कतरे के लिए तड़पता दीख रहा है। कली-कली पर मंडराने वाले भ्रमरो का छटपटाना देख तो कवि का दुःख और भी वढ़ जाता है। उसे यह संसार का नियम जान पड़ता है कि प्रेमी अपने प्रेमास्पद को पाने के वदले केवल दुःख ही पाता है, इसलिए वह अपने हृदय को वार-वार रोने का ही आदेश देता है। दुःख-शान्ति के लिए उसे ज्ञान का आश्रय लेना नही जंचता। दर्शन—(आत्मा परमात्मा का विवेचन—आध्यात्मिक विचारधारा) ज्ञान की आलस भरी जम्हाई के सिवा और कुछ नहीं है। कवि ने दर्शन को पुराने अनुभवों का सकलन मात्र माना है।

कवि न तो दर्शन से सान्त्वना चाहता है और न नीरस उपदेश ही। कवि के आहत मर्म को तो उपदेश पत्थर से चोट करते जान पड़ेंगे। अपनी प्रिया से विलग हो वह केवल एकान्त दुःख चाहता है और चाहता है निरन्तर उसका ही चिन्तन, और कुछ नहीं।

व्यर्थ मेरा धन ......उमड़ते हैं हृदय में। (पृ० ३६)

कवि की निधि, उसका सर्वस्व अब 'सजल वेदना ही है। किसी भी मूल्य पर वह सरस वेदना से पृथक होना नहीं चाहता। यह वेदना उसे प्रणय-व्यापार से लाभ के रूप मे प्राप्त हुई है। मूक निराशा, मुखर परन्तु पूर्णतः नग्न शिशिर ऋतु के समान बिच्छू के डक मारने जैसी व्यथा, हृदयाकाश मे आह की दबी आंधी, प्रियतमा की कभी न मिटनेवाली स्मृति और आँखो में काटे के समान चुभनेवाला प्रियतमा का रूप कवि की वेदना-निधि के उपकरण हैं। आज भी कवि के हृदय में प्रेमोद्‌गार बादलो के समान उमड़ते घुमड़ते रहते हैं। कवि ऐसी सजल पीड़ा से दूर रहना नही चाहता। यही तो उसके निर्मल प्रेम का धरोहर है।

छिः सरल सौन्दर्य ......सुमन से हृदय में। (पृ० ३७)

कवि अपनी प्रेमिका के सरल एवं अकृत्रिम सौन्दर्य पर ही मुग्ध हुआ था। कवि सौन्दर्य को निष्ठुर इसलिए कह रहा है कि उसके सहज आकर्षण से ही कवि का यह हाल हुआ और नादान — नासमझ, इसलिए कि उसने कवि की मम-व्यथा को तनिक भी नहीं समझा। प्रिया के नेत्र, पुतली, विम्बोष्ठ, सुकोमल गाल, लम्बी पतली अगुलियां तथा अत्यन्त ही पतली कमर पर और कहाँ नहीं, सौन्दर्य अठखेलियां कर रहा था, जिसने अपनी लुका-छिपी के खेल से कवि-हृदय को अपना निशाना बनाया। शायद स्वयं सौन्दर्य को यह पता भी नहीं कि फूल के समान कोमल हृदय पर वह अपनी अकृत्रिमता से कितनी बड़ी चोट पहुँचाता है।

औ' अकेले चिबुक ...... की तुमने चुरा। (पृ० ३७)

सौन्दर्य इतना सम्मोहक है कि किसी का भी धैर्य, किसी की भी स्थिरता उसके सामने टिक नहीं सकती। ठुड्डी के गड्ढे में पड़ा तिल (तिलवा), लवूर्मियों के समान भौंह की वक्रता, अधखुली आँखें और होंठ पर अस्फुट मुस्कान किसका हृदय विचलित नहीं कर देते।

कवि को ऐसा लगता है जैसे उसकी प्रिया का सौन्दर्य पुष्प की सन्तान हो क्योंकि फूल की मधुर गन्ध की-सी मधुरिमा, पराग-सी कोमलता, कटकों की तीव्रता एवं भ्रमरों का मतवालापन—सब कुछ उसके सौन्दर्य में है। कवि अपनी प्रिया के सौन्दर्य के व्यापक प्रभाव से क्षणभर के लिए भी तटस्थता का अनुभव नहीं करता।

और भोले प्रेम! ... ...अपरिचित हाथ में । (पृ० ३८)

कवि सौन्दर्य से प्रेम की ओर मुड़कर कहता है, हे भोलेभाले प्रेम, मालूम होता है तुम पीड़ा (वेदना) के आकुल हाथों से निर्मित हुए हो, कारण, जहाँ कहीं भी तुम मतवाले हाथी के समान घूमते हो, वहीं आह, विक्षिप्तता तथा जलन है। केवल इतना ही नहीं तुम चंचल और विवेकहीन भी हो। तुम्हारे पास कोमल हृदय तो अवश्य है पर बुद्धि नहीं और शायद इसीलिए बिना सोचे समझे अनजान के हाथों में भी अपना हृदय दे डालते हो। कवि को स्वयं ही अपना हृदय एक अपरिचित को देकर प्रेम के कारण दुःख उठाना पड़ रहा है।

स्मृति यदपि तुम प्रणय ... . समय सा। (पृ० ३८)

कवि के समक्ष उसकी प्रेमिका नहीं, केवल स्मृति मात्र उसके मन-प्राणों को सदा जल में पड़नेवाली क्षणिक एवं क्षण-क्षण परिवर्त्तनशील छाया के समान हलचल मचाती रहती है। यह सुख-यह गुदगुदी-प्रेमाभिनय का संस्मरण भी क्षणिक है। प्रतीत होता है जैसे स्मृति का स्वभाव भी अबोध बालिका के समान है जो केवल खेलने के लिए ही सदा खेला करती

है, किसी पर क्या बीतता है, इसका ध्यान नहीं रखती। कवि नियति-प्रकृति को सहज ही कोमल, दोषहीन एवं अलिप्त बतला रहा है। प्रकृति संचालन-सूत्र अपने हाथो में लिए उत्थान-पतन, सुख-दुःख, अनुराग-विराग का दृश्य उपस्थित करती रहती है और स्वयं सदा-सर्वदा अलिप्त (अछूत) रहती है। कवि स्वयं चकई के फूट जोड़े के समान व्यथित है। प्रकृति को चकई का खेल भी अत्यधिक पसन्द है। समय के अनुसार ससार-चक्र का परिवतन ही प्रकृति का अटल नियम है। कवि सांसारिक होने के कारण अपने को भी अपवाद नहीं मानता।

मंजु छाया के विपिन मे ... .मुख तेरा सदा। (पृ० ३९)

असफल प्रेमी का जीवन आशा पर आधारित होता है। वह अपनी अतृप्त कामनाओ की तृप्ति स्वरचित स्वप्न-लोक से करता रहता है। कवि का जीवन भी असफल प्रेमी का जोवन है। कवि कल्पना-जगत में आशा की किरणे पाकर आनन्द-विभोर होता रहता है। कल्पना जगत में आशा सम्बधित परिकल्पनाओ का वन है, अजस्र-शीतल अमृत-धार बरसाता पूर्णचन्द्र है और सुन्दर मोतियो से बने नूपुर के समान ओस-बिन्दु-माला धारण किए आशा क्षण-क्षण वेश बदलती रहती और वियोगी को शीतलता प्रदान कर सब्ज बाग दिखाया करती है। आशा नित्य है, अमर है। वह नित्य वेश बदलनेवाली, अत्यन्त मोहक, शुष्क जीवन मे रस संचार करनेवाली तथा सदा-सर्वदा से दुखियो की सगिनी है। इसीलिए धन-हीन, पिपासाकुल एवं रूप के लोभी—सभी दुःखी-व्यथित सदा आशा का ही मुह ताकते रहते हैं। आशा ही उनके जीवन का एकमात्र सबल है।

देवि ऊषा के खिले ....निर्जन पुष्प से। (पृ० ३९)

हे देवि, ऊषाकाल में तुम्ही तो कुसुम कलियो को विकसित करने को आती हो। उस समय तुम्हारे सौरभ-केश-पाश मे भ्रमर बंधे होते हैं, तुम पराग परिधान धारण किए रहती हो और अपने सुभग सिर पर ओस-कणो का मुकुट पहने रहती हो। आशा-आसव उन्माद दान देता है। जो

उन्माद मेघ-सा जल एवं स्वच्छन्द कल्पना के परों पर उड़ने वाला होता है। वह नैसर्गिक है। उसका जन्म कुमुदिनी के कोमल करों से हुआ है। वह भ्रमर-गुंजार ही आकण्ठ पीकर मस्त बना रहता है निर्जन वन-कुसुम के समान। उसपर किसी की दृष्टि नहीं पड़ने पाती।

आह !—सूखे आंसुओं .... मनोरम हो कहीं। (पृ० ४०)

जब आँखों से आंसू गिरना थम जाता है, तो वियोगियों के हृदय से आह निकलने लगती है। यह आह कुहरे के समान बाधा रहित प्रशस्त प्रेम-पथ पर लरज-लरज कर छा जाती है। कभी-कभी मेघ के समान शान्ति से बरस कर जले हृदय का दुःख भार कम कर देती है। और, अश्रु-कण तो नेत्रों के मोती ही ठहरे। आँखों से जितनी भी शोभा, जितना भी सौन्दर्य देखा जा चुका है उन सब से यह कहीं अधिक स्वयं मनोरम है। नयन के अबोध बालक जो ठहरा।

अश्रु !—दिल की गूढ़ ' भाता है तुम्हें। (पृ० ४०)

हृदय में चाहे जितना भी गूढ़ कारण दुःख का रहा हो परन्तु उनकी अभिव्यक्ति भोलेभाले अश्रु-बिन्दुओं से ही होती है। आँसू मार्मिक-व्यथा का भाव है—निचोड़ है। व्याकुलता के क्षणों में आँसुओं की माला जपी जाती है। आँसू मर्म-क्षत को धो डालते और शीतलता प्रदान करते हैं।

वेदना संसार की कोमल दृष्टि है। हृत्तन्त्री को क्षुब्ध कर देनेवाली महासंगीत-ध्वनि तथा मूक हास्य है। वेदना का हृदय नवनीत-सा कोमल एवं द्रवणशील है। इसे अश्रु-क्रीड़ा बहुत पसन्द है।

वेदना !—कैसा करुण ..... 'अभागे हृदय ! रो !! (पृ०४१)

वेदना में न जाने कितनी करुणा समाहित है। इसके उच्चारण मात्र से करुणा संचारित होने लगती है। निखिल विश्व वेदनामय है। ओस-कण, तृण-दल, पत्थर, लहरें, तारे और आकाश सभी वेदना के प्रतीक हैं—वेदना से ओत-प्रोत हैं। वेदना व्यापक है और अत्यन्त विशाल है। यह निराशा के अन्धकार से पूरित हृदय की दीप-शिखा है। रूप-सौन्दर्य की

स्मृति-चित्रों को रखनेवाली [illegible] है। इसकी परिधि भूमण्डल की प्रकृति के समान ही दुर्लभ, दुर्गम एवं विशाल है। [illegible] बतला रहा है। प्रकृति संचालक ईश्वर अपने हाथ के लिए [illegible] सुख-दुःख, कुसुम-कांटे [illegible] एक ओर बढ़ रहा है, तो इसी ओर चातक एक बूँद पानी के लिए [illegible] रहा है। देखने से तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस संसार में प्रेम करनेवालों को रोना ही पड़ता है। यही यहाँ का नियम और न्याय है। इसीलिए कवि भी अपने प्रेमी हृदय होने के कारण [illegible] को यह आभास [illegible]।

मंजु छाया के विपिन से ··· ··· सुख तेरा सदा । (पृ० ३९)

और जब विधुर का जीवन आँसू से है विकल!! (पृ० ९१)। वह अपनी [illegible] ऐसा कौन सामर्थ्यवान है जो विरही हृदय के व्रणों पर मरहम-पट्टी कर सकता है। वियोगियों के हृदय से जो आहें आँसू बन कर [illegible] से बाहर आकर दुःख की बाढ़ ला देती हैं उन्हें कौन समझ पाता है? किसे फुर्सत है जो विरहियों की सुधि ले? विरही-जीवन एकाकी है। वह कभी [illegible] से चीत्कार [illegible] आँसुओं [illegible] है। उसके एकाकी जीवन [illegible] ने कितनी ही [illegible] के आँसुओं में ही डुबोकर [illegible] लेखनी, [illegible] लिख दिया है। [illegible] के लिए 'विरह' ही [illegible] है [illegible] रस संचार [illegible] (पृ० ९२) इसीलिए [illegible] कवि [illegible] इस संसार में [illegible] निर्धन को कहीं [illegible] नहीं मिलती [illegible] दोनों निराधार, निरवलंब [illegible] अशरण होते हैं [illegible] आसक्ति पूर्ण उनका दुर्बल हृदय वियोगाग्नि में जल कर विरक्ति की शक्ति में परिणत हो जाता है। दुर्बलता के बदले दृढ़ता आ जाती है। आसक्ति के विरक्ति बन जाती है [illegible] निर्धनी के पास सिवा कंकाल (हड्डियों का ढाँचा) के और कुछ बच नहीं पाता। इस कंकाल से, जो निराशा के घोर अंधकार से आवेष्टित है, एक वेदनापूर्ण स्वर सदैव गूँजता रहता है, पर उसे कोई सुनता नहीं, वह शून्य में ही विलीन हो जाता है। जो

[illegible] देने के लिए मूक तरंगों से पूरित [illegible] वह रहा है [illegible] ((पृ० [illegible]))

[illegible] हो सकता [illegible] सिवा धुओं के और [illegible] भस्मीभूत को जिस [illegible] कान्त सघन कुञ्जों की छाया और [illegible] कवि की [illegible] वेदना-कानन के सघन कुञ्जों में [illegible] और भी ...... मनोहर विपिन में (पृ० ५०) [illegible] एवं सुन्दर [illegible] वेदना-[illegible] भी और बहुत शेष है, परन्तु मैं स्वयं रमणीय वेदना-कुञ्ज में सब प्रकार से सुखी हूँ, सम्पन्न हूँ। वेदना का निष्कपट साम्राज्य मुझे सहज ही प्राप्त है। ((पृ० [illegible]))

जैसे [illegible] से [illegible] है, वैसे ही कवि की आँखें अश्रु-जाल से [illegible] ...... [illegible] कुम्हलाए फूलों में कवि के [illegible] नहीं है। [illegible] कवि का [illegible] है। [illegible] जैसे [illegible] [illegible]

आजीवन वेदना-निधि का ही संरक्षण होगा, क्रूर नियति के हाथो में ही है।

गर्व सा गिरि उच्च निर्झर ...... ज्योति में ! (पृ० ४८)

ऊँचे पर्वतो से निर्झर जब नीचे झरता है तो घोर नाद होता है। कवि का हृदय सूना (पत्थर) हो गया है। गर्व जैसे बहुत ऊँचे पर्वत से कवि का सुख-स्वप्न निर्झर के समान उसके हृदय में गिर कर वज्र के समान भयानक शब्द कर रहा है। प्रतीत होता है, जैसे वहाँ प्रबल-प्रभजन, भूचाल एव ऐसे ही अनेक उपद्रव उठ खड़े हुए हैं। यही कवि-हृदय का हाल है। कवि-प्रेम की असफलता (पतन) ने मानो निश्चल तारागण से मूकता एवं विस्मय ले लिया हो और सारे ससार को एकटक धौत-चन्द्रिका के झीने पर्दे से देख रहा हो। संसार की भीरुता—सामाजिक भीरुता के कारण ही कवि का ग्रन्थि-बन्धन उसकी प्रेमिका से नहीं हो सका। इसलिये यह भीरुता कवि को बेहद खल रही है।

तिमिर के अज्ञात अंचल ... ...प्रलय की राह को ? (पृ० ४८)

अधकार के अनजान आवरण में छिपकर आज भी कवि की भ्रांति—(प्रिया का मिलन या संतत विछोह) भ्रमर के समान मडरा रही है। निराशा के प्रस्तर-खण्ड पर चूर-चूर होकर आशा सैकड़ो टुकड़ो में आज भी चांदनी की लघूर्म्मियो मे क्रीड़ा कर रही है। अन्धकार सचमुच ससार का पागलपन है क्या जो प्रकृति के निष्ठुर रूप को छिपाने का प्रयास करता रहता है ? या यह घोर अन्धकार किसी दग्ध-हृदय की मूक आह है, जो प्रलय की राह ढूँढ़ रही है ?

या किसी के प्रेम-वंचित ... नीरव लहर में। (पृ० ४६)

अथवा यह तमिस्रा किसी असफल प्रेमी की आँखो की भाषा-हीन जड़ता है जो हवा के झोंको के साथ सदा भ्रमण करती हुई तारो से पूछती रहती है कि किसने उनकी आँखो की नींद हराम कर दी है ? दुःख-साम्य के कारण शायद असफल प्रेमी और तारे दोनो सदा-सर्वदा निर्निमेष

देखा करते हैं। या यह घोर-तमिस्रा किसी विफल प्रेमी के अश्रु-कणों का सागर है जो संसार की सत्ता को मग्न कर देने के लिए गुरु तरंगों से पूरित हो उमड़ रहा है। बढ़ रहा है।

आह, यह किसका अँधेरा ''.....क्यों व्यग्र है। (पृष्ठ ४१)

कवि प्रलय के अकाण्ड ताण्डव सा, सीमाहीन विषाद (दुःख) या किसी का घोर-अन्धकारपूर्ण भाग्य (रजनी) देखकर प्रश्न कर रहा है। शायद उसके दृष्टि-पथ में यह अपना ही भविष्य, अपनी ही [illegible] की घटनाएँ मूर्त्त हो उठी हैं। न जाने कौन कवि के कल्पना-कानन में भी कलङ्क सा निर्भीक होकर घूम रहा है। कवि हृदय को सम्बोधित करके कह रहा है कि यह तुम्हारा ही जला हुआ (प्रेत) रूप है जिसमें अब सिवा धुआँ के और कुछ बचा ही नहीं। फिर तू (हे हृदय) अपने इस [illegible] को जिसमें कोई कल्मष-कामना नहीं है और अत्यन्त पवित्र-पट से दुर्दैव का मुख ढकने को क्या व्याकुल हो रहा है?

× × ×

विज्ञ वाचक! और भी.... ...मनोहर विपिन में (पृष्ठ ५०)

हे विद्वान पाठकों, यद्यपि सम्प्रति मेरे पास दुःख के उपकरणों (साम-ग्रियों) का अभाव नहीं है, अभी और बहुत शेष हैं, परन्तु मैं स्वयं रमणीय वेदना-वन में सब प्रकार से सुखी हूँ, सम्पन्न हूँ। वेदना का निष्कपट साम्राज्य मुझे सहज ही प्राप्त है।

पतन के नीले अधर ...... कमल में आपके। (पृष्ठ ५०)

कवि ने अबतक अपने प्रणय-व्यापार की गतिविधि से पाठकों को परिचित कराया तथा अभाग्यवश विफल प्रणय का निष्ठुर उपहार भी निवेदित किया। कवि के विफल प्रणय के उत्ताप को क्या किसी सहृदय व्यक्ति ने कम करने की चेष्टा की है? या स्वयं ईश्वर भी ऐसा कर सकने में समर्थ है? कवि को ऐसा विश्वास नहीं होता। वक्र भावी

के अंधकारपूर्ण कुएं में और न जाने कितने विरह-जन्य आँसू छिपे हुए हैं. कवि उन्हे सरस छन्द-माला में पिरोकर अवसर आते ही अपने प्रिय पाठकों को भेंट करेगा। ऐसी कवि की कामना है। शायद कवि के आँसुओं का मूल्य अपने कमल सरीखे हाथों में लेकर आंक सकें।
